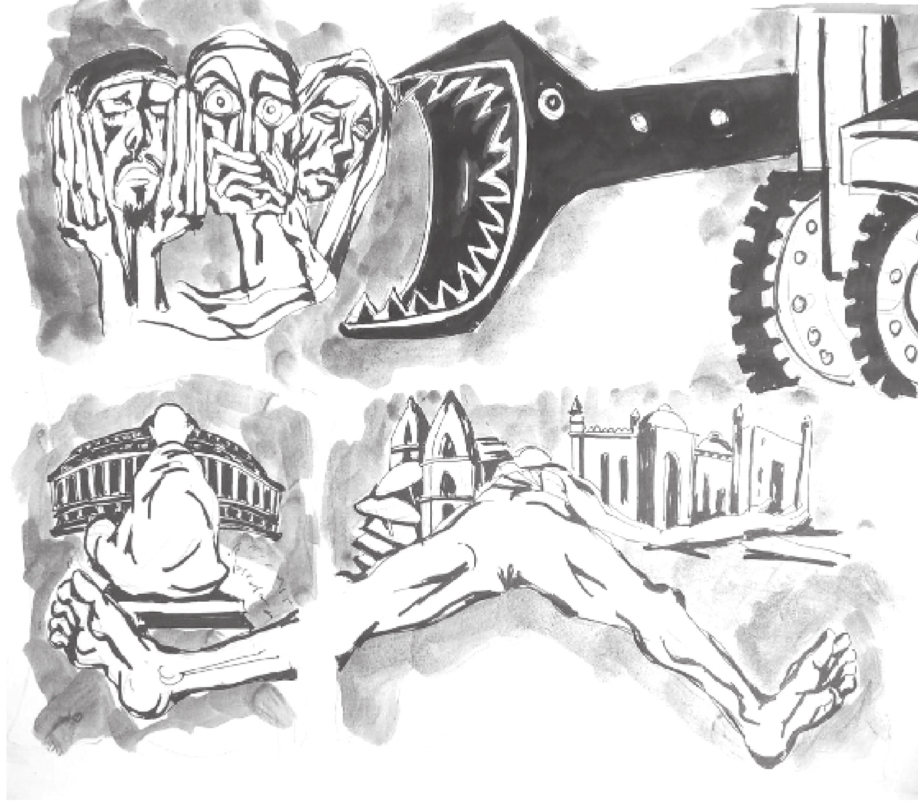
वर्ष 45 अंक 9-10, जनवरी-फरवरी 2023 मूल्य 20 रुपये

सामयिक वार्ता



समाजवादी जन परिषद का 13 वां राष्ट्रीय सम्मेलन
और
पारित राजनीतिक-आर्थिक प्रस्ताव

कविता



हँसो हँसो जल्दी हँसो

रघुवीर सहाय

हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है-
हँसो अपने पर न हँसना क्योंकि उसकी कड़वाहट
पकड़ ली जाएगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसो कि बहुत ख़ुश न मालूम हो
वरना शक होगा कि यह शख़्स शर्म में शामिल नहीं
और मारे जाओगे

हँसते-हँसते किसी को जानने मत दो किस पर हँसतो हो
सबको मानने दो कि तुम सबकी तरह परास्त होकर
एक अपनापे की हँसी हँसते हो
जैसे सब हँसते हैं बोलने के बजाय
जितनी देर उँचा गोल गुंबद गूँजता रहे, उतनी देर
तुम बोल सकते हो अपने से
गूँज थमते-थमते फिर हँसना
क्योंकि तुम चुप मिले तो प्रतिवाद के जुर्म में फँसे
अंत में हँसे तो तुम पर सब हँसेंगे और तुम बच जाओगे

हँसो पर चुटकुलों से बचो
उनमें शब्द हैं
कहीं अनमें अर्थ न हों जो किसी ने सौ साल पहले दिए हों

बेहतर है कि जब कोई बात करो तब हँसो
ताकि किसी बात का कोई मतलब न रहे
और ऐसे मौकों पर हँसो
जो कि अनिवार्य हों
जैसे गरीब पर किसी ताकतवर की मार
जहाँ कोई कुछ कर नहीं सकता
उस गरीब के सिवाय
और वह भी अक्सर हँसता है

हँसो-हँसो जल्दी हँसो
इसके पहले कि वह चले जाएँ
उनसे हाथ मिलाते हुए
नजरें नीची किए
उसको याद दिलाते हुए हँसो
कि तुम कल भी हँसे थे

'रघुवीर सहाय संचयिता' (संपादक : कृष्ण कुमार) से साभार

सामयिक वार्ता

जनवरी-फरवरी 2023 वर्ष 45 अंक 9-10

संस्थापक संपादक : किशन पटनायक

संपादक : **अफलातून**

कार्यालय : 20 ए समसपुर जागीर, पांडव नगर
दिल्ली - 110091
ईमेल : varta3@gmail.com
sjp.delhistate@gmail.com

सदस्यता शुल्क :

एक प्रति	:	20 रुपए
वार्षिक शुल्क	:	200 रुपए
संस्थागत वार्षिक शुल्क	:	300 रुपए
छह साला शुल्क	:	1000 रुपए
आजीवन शुल्क	:	3000 रुपए

खाता नाम : सामयिक वार्ता या Samyik Varta
बैंक ऑफ बड़ौदा (Bank of Baroda)
शाखा : सोनारपुरा, वाराणसी (उ. प्र.)
Sonarpura, Varanasi (U.P.)
आईएफएससी कोड
खाता संख्या : 40170100005458
IFSC : BARB0SONARP
(यहां दूसरा B के बाद जीरो है, ओ नहीं है, एस के बाद O (ओ) है
MICR CODE : 221012030
(इस खाते में पैसे जमा करने तथा ग्राहक के पते की सूचना ईमेल अथवा मोबाइल 8765811730 / 8004085923 पर दें।)

इस अंक में

संपादकीय

अभिव्यक्ति के माध्यमों के चरित्र और स्वरूप को बदलने की साजिश

विषमता, जाति, धर्म के आधार पर सिद्धांतहीन व वोट की राजनीति करने वाली राजनीतिक पार्टियां और उनकी सरकारें अभिव्यक्ति के माध्यमों के चरित्र व स्वरूप को बदल देने पर आमादा हैं। उनके लिए यह जरूरी हो गया है क्योंकि ऐसा नहीं करने पर उनके अनुकूल एकतरफा माहौल नहीं बन पाएगा और उनकी मंशाएं पूरी नहीं हो पाएंगी। उनकी मंशाओं में एक मंशा देश को वैश्वीकरण और बाजारवाद में झोंक देना है। वैश्वीकरण और बाजारवाद के दबाव में ऐसा किया जा रहा है या हो रहा है।

अभिव्यक्ति और उसकी आजादी पर प्रत्यक्ष या परोक्ष पाबंदी लगाने की कई बार कोशिश हो चुकी है। जब भी ऐसी कोशिश हुई और जहां कहीं भी हुई, इसका पुरजोर विरोध हुआ। यह साफ है कि इससे छेड़छाड़ नहीं की जा सकती। ऐसा करने पर विरोध में देश उठ खड़ा होगा। अभिव्यक्ति और उसकी आजादी देश के लोकतंत्र और उसके अनुरूप व्यवस्था का एक मानदंड है। पाबंदी तानाशाही का द्योतक है।

आजादी के बाद खासकर 1972-73 से 1977 तक शासक पार्टी और उसकी केंद्र और राज्य की सरकारों ने अभिव्यक्ति की आजादी पर घोर प्रहार किया। उन्हें इसका खामियाजा भी भुगतना पड़ा। नतीजन यह हुआ कि राजनीतिक पार्टियां और उनकी सरकारें संभल गईं। लेकिन 1990-91 के बाद सत्ता में रहीं पार्टियों के आला नेताओं ने अभिव्यक्ति के माध्यमों यानी अखबारों-पत्रिकाओं के खिलाफ यह प्रचार शुरू किया कि ये झूठ लिखते और बदनाम करते हैं। अखबारों-पत्रिकाओं का मजाक उड़ाने का सिलसिला चल पड़ा। उनके इस करतूत से एक तरफ राजनीतिक व सरकारी हलकों को प्रेस जगत को दबोचते रहने का बल मिला, दूसरी ओर अखबारों-पत्रिकाओं के खिलाफ माहौल बना और उनके प्रति आम लोगों का विश्वास डगमगाया।

अखबारों-पत्रिकाओं ने अपने चरित्र व स्वरूप की रक्षा के लिए जो रणनीति अपनाई, वह उनके लिए घातक हुई। उन्होंने अपने बचाव में बतौर विकल्प ऐसा कुछ नहीं किया जिससे सरकारी या गैर सरकारी मदद (यानी विज्ञापन) के बगैर वे चल सकें। वे सरकारों, राजनैतिक पार्टियों, पूंजीपतियों पर ज्यादा से ज्यादा निर्भर रहने लगीं, यों कहें वे विज्ञापन के लिए दंडवत करने लग गईं। अखबारों-पत्रिकाओं में वही होने लगा, जो अभिव्यक्ति और उसकी आजादी के विरोधी चाहते रहे हैं।

अखबारों और पत्रिकारों में संपादकीय विभाग की औकात धीरे-धीरे कम कर दी गई, विज्ञापन और प्रसार के विभाग ही सब कुछ हो गए। प्रबंधन यानी मालिकों की टीम ज्यादा मुनाफा की व्यावसायिकता के मकसद से वही करने लगी. जो सत्ता चाहती है।

एक समय था जब अखबारों-पत्रिकारों में खबरों को प्राथमिकता दी जाती थी। खबरों को छापने के लिए विज्ञापन हटा दिए जाते थे। अव खबरें भले न छपें, विज्ञापन जरूर छपते हैं। 'सबकी खबर लें, सबको खबर दें', 'जो कोई न जाने, वही जनाएं' का दौर खत्म हो गया। खबरें नाकारत्मक (निगेटिव) ही होती हैं, साकारात्मक (पॉजिटिव) कभी नहीं, यह मान्यता थी और अब ठीक उल्टा है। 'पेड न्यूज' शुरू हो गया है। कई संपादकों ने तो इसका विरोध किया लेकिन उसका कोई फायदा नहीं हुआ। अब तो 'पेड पेज' या 'पेड पेपर' का चलन हो चुका है। ऐसी हालात में जोखिम लेकर कुछ ही अखबार और पत्रिकाएं अपने चरित्र और स्वभाव को किसी तरह बचा कर चल रही हैं। टीवी चैनलों की भी स्थिति अखबारों-पत्रिकाओं ही जैसी है। उनको अलग नजरिये से नहीं देखा जा सकता।

गौरतलब है कि पहले अखबारों-पत्रिकाओं को प्रेस कहा जा रहा था। जब टीवी चैनलों की बाढ़ आ गई तो प्रेस की जगह मीडिया शब्द का इस्तेमाल होने लगा। 'मीडिया' अब 'गोदी मीडिया' बन गया है। सोशल मीडिया का दौर है। गोदी मीडिया से निराश जनों को सोशल मीडिया से राहत मिल रही है। मीडिया जो काम नहीं कर पा रहा है, वह सोशल मीडिया कर रहा है, भले उसकी सीमा है। मीडिया को गोदी मीडिया बनाने की चाल को समझने, मीडिया के चरित्र और स्वरूप को बचाने के आंदोलन की जरूरत है। यह तभी संभव है जब इसके लिए आम लोग आगे आएं।

गंप्र

बच्चों को तो बख्श दो

मध्य प्रदेश की एक घटना यह है कि आठवीं कक्षा के एक दलित छात्र ने आत्महत्या कर ली। उसके हाथ का लिखा एक पन्ना मिला जिस पर उसने अपने स्कूल के शिक्षकों पर कई आरोप लगाए हैं। आरोप यह कि उसके शिक्षक जाति के आधार पर उसे तरह-तरह से प्रताड़ित करते हैं। हमें 'समता मार्ग' से यह जानकारी मिली। यह एक वेब पोर्टल है।

अमित प्रजापति नामक दलित छात्र सीधी जिले के रामपुर (सैकिन) थाने के तहत पड़खुरी गांव का रहने वाला था। वह नवोविद्यालय, चिरहुट सर्रा का छात्र था। उसके परिवार के लोगों का कहना है कि अमित को नीची जाति का बता कर दुर्व्यवहार किया जाता था। स्कूल के शिक्षकों का तर्क है कि वे अच्छी तरह से पढ़ने-लिखने के लिए केवल डांट-डपट करते थे। स्थानीय प्रशासन इस घटना की जांच कर रहा है। याद दिला दे कि राजस्थान में शिक्षक द्वारा एक दलित छात्र को बुरी तरह मारने-पीटने की घटना हुई थी। छात्र का कसूर यह था कि उसने स्कूल में रखे घड़े से पानी ले कर पी लिया था। उसे इतना मारा-पीटा गया कि वह अधमरा हो गया और उसके परिवार वालों को उसकी जान बचाने के लिए उसे अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। स्कूल के शिक्षकों ने इस घटना को सिरे से इनकार किया और प्रशासन ने जांच करने का भरोसा दिया।

दलित युवकों को साइकिल पर या घोड़ी पर चढ़ने या सज-धज कर रहने पर प्रताड़ित करने, उसे मारने-पीटने, झूठे आरोप लगा कर, नंगा कर सामूहिक पिटाई करने, मोटर साइकिल में बांध कर घसीटने, दलित युवतियों के साथ छेड़खानी और बलात्कार करने की घटनाएं अखबारों में देखने को मिलती रहती हैं। अब स्कूली बच्चों के साथ भी जुल्म की घटनाएं होने की खबरें आने लगी हैं। यहां यह भी जिक्र कर देना जरूरी है कि ऐसी घटनाएं होती हैं बहुत, लेकिन कुछ का पता कभी-कभार ही चल पाता है। अधिकतर घटनाएं दबा दी जाती हैं।

जब समाज में मनुवादी ताकतें ताकतवर होने लगें और विषमता का सबसे बड़ा आयाम जातीयता उभारी जाने लगे, तो ऐसी घटनाओं का होना अस्वाभाविक नहीं है। ऐसी घटनाओं का जितना विरोध होना चाहिए, नहीं हो रहा है। सामाजिक आंदोलन न होना इसकी बड़ी वजह है।

जोशीमठ के ध्वस्त होने का मतलब

जोशीमठ अब पहले जैसा नहीं है। यह शहर धंस और बर्बाद हो रहा है। वहां के लोग शरणार्थी बन गए हैं। जानकार बताते हैं कि केंद्र सरकार की योजनाओ को पूरा करने के लिए हो रहे निर्माण कार्य के दौरान जोशीमठ के धंसने का सिलसिला शुरू हुआ और यह सिलसिला कब खत्म होगा, निश्चित तौर पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता। निर्माण कार्यों के चलते उत्तराखंड के विभिन्न इलाकों को ऐसी बर्बादी का सामना करना पड़ रहा है। वैज्ञानिक व प्राकृतिक दृष्टि से मनाही को नजरअंदाज कर 'विकास' का दिखावा और निर्माण कार्य किया जा रहा है।

कहना न होगा कि सरकार और प्रशासन की ओर से पर्यावरण की रक्षा करने के दावे झूठे साबित हो रहे हैं। उसके साथ नाइंसाफी हो रही है। प्रकृति से जबरजस्ती की जा रही है। पहाड़, जंगल, जमीन, वन, नदी, झील, समुद्र से वर्यावरण बनता है। पहाड़ तोड़े जा रहे हैं। जंगल काटे जा रहे हैं। जमीन अनुपजाऊ बनाई जा रही है। वन खत्म किए जा रहे हैं। नदियों पर बड़े-बड़े बांध बनाए जा रहे हैं। नतीजन पहाड़ों का धंसना, अचनाक मौसम बदलना, बादल फटना, जलस्तर का नीचे जाना, नदी सूखना, झील का पटना, बाढ़, सूखा जैसे संकट बढ़ने लगे हैं।

गांव को उजाड़ कर शहर को आबाद किया जा रहा है। शहर की चमक-धमक के लिए पर्यावरण की उपेक्षा हो रही है। शहर पर अंकुश नहीं लगाया गया, पर्यावरण विरोधी शहरी मानसिकता को नहीं बदला गया, मौजूदा तथाकथित विकास को नहीं त्यागा गया तो विनाश को रोका नहीं जा सकता।

–सांवादिक

सामयिक वार्ता की यात्रा

अतुल कुमार

सामयिक वार्ता का मौजूदा यह अंक आपके हाथ में है। इधर कुछ महीने से आपको कई अंक नहीं मिले होंगे, उसके पहले डाक से, साथियों के हाथों व ऑनलाइन भी मिलते रहे होंगे। कोरोना जैसे व्यवधान के चलते सामयिक वार्ता समय से आप तक नहीं पहुंच पाई। हमारी कोशिश है और हमें उम्मीद भी है कि सामयिक वार्ता समय पर आप तक पहुंचे। यह कहना अति न होगा कि सामयिक वार्ता देश में हिंदी में वैचारिकी प्रस्तुत करने का दुर्लभ माध्यम है। यह हमारे विचारों को समाजवादी कसौटी पर परीक्षण कर परिमार्जित करती है।

हम आपको याद दिलाना चाहेंगे कि कलकत्ता (कोलकाता) से सत्तर के दशक में प्रकाशित होने वाली चौरंगी वार्ता की ही कड़ी में सामयिक वार्ता ने उन जिम्मेदारियों को बखूबी निभाया है जिसकी कल्पना चौरंगी वार्ता के वक्त की गई थी। आपातकाल में चौरंगी वार्ता पर सरकार की कुदृष्टि और उसके प्रकाशकों, संचालकों, लेखकों और उससे जुड़े महत्वपूर्ण जनों के जेल में चले जाने के बाद वह बंद हो गई। आपातकाल के बाद 1977 में लोकनायक जयप्रकाश नारायण की शुभकामनाओं के साथ सामयिक वार्ता का पटना से प्रकाशन शुरू हुआ।

पटना से सामयिक वार्ता का प्रकाशन स्वर्णकाल कहा जा सकता है। संपादक किशन पटनायक और संपादन कार्य संभालने वाले अशोक सेकसरिया के हाथों यह पत्रिका चमक रही थी। दस हजार से ज्यादा प्रतियां पाठकों के हाथों में पहुंच रही थी। लेकिन कुछ वर्षों बाद हालात ऐसे बने कि उसे 1984 में वाराणसी ले जाना पड़ा। यहां साथियों के सहयोग से यह अपने असरदार व उज्जवल रूप में प्रकाशित होती रही। वाराणसी में रहते सामयिक वार्ता ने नए-नए साथियों को जोड़ा ही, अपनी वैचारिकी को भी तेवर के साथ धार दिया। तब समता संगठन का गठन हो चुका था और किशन पटनायक की अगुवाई में इसके नेता-कार्यकर्ता वैकल्पिक राजनीति का आकार देने का उद्यम करने लगे। सामयिक वार्ता इस वैकल्पिक राजनीति के वैचारिक पक्ष का मुखपत्र और वाहक बन गई थी। इस दौर में सामयिक वार्ता ने अनेक ज्वलंत मुद्दे उठाएं और अपनी राय रखी। पंजाब का ऑपरेशन ब्लूस्टार, प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या, सिख विरोधी दंगे और देश भर में उसका असर, इंदिरा सहानुभूति के बल कांग्रेस को बहुमत, उसकी सरकार के दौर में अपनाई गई नीतियों पर सामयिक वार्ता ने बड़ी संजीदगी और गंभीरता से बेबाक विश्लेषण किया और वैकल्पिक राजनीति बाबत समाजवादी नेताओं-कार्यकर्ताओं को दिशा दी।

सामयिक वार्ता को 1989 में वाराणसी से मुजफ्फरपुर ले जाया गया। बिहार के इस एक छोटे शहर में इसका व्यापक स्वागत हुआ। उसे अनेक नए सहयोगी और वैचारिक समूह मिले, जिनके सहयोग से उसने अपने तेवर और धार को बरकरार रखा। एक खास बात यह भी थी कि समाजवादी विचारक सच्चिदानंद सिन्हा का सानिध्य प्राप्त हुआ। सामयिक वार्ता से जुड़े समाजवादियों का समूह देश भर में फैले अनेक समूहों को इकट्ठा करने में लग गया और इसी दौर में वैकल्पिक राजनीति के मद्देनजर जनांदोलन समन्वय समिति का उदय हुआ, जो इस वैकल्पिक राजनीति को संसदीय राजनीति के मैदान में दल बना कर उतारने के लिए तत्पर हुआ। जनांदोलन समन्वय समिति ने इस दौर में नीति निर्माण की प्रक्रिया शुरू की, जिसकी धरातल पर आखिरकार 1995 में समाजवादी जन परिषद नामक राजनीतिक दल बना। इस पूरे दौर में सामयिक वार्ता पूरी प्रक्रिया की वाहक बनी और

हर पक्ष को सामने रखती रही।

सामयिक वार्ता जनवरी 1994 तक मुजफ्फरपुर से ही प्रकाशित हुई। उसके बाद उसे वाराणसी ले आया गया। वह यहां से 1998 तक प्रकाशित होती रही। चौरंगी वार्ता की तरह सामयिक वार्ता के प्रारंभ से जो एक बात अनवरत और एक लय में चलती रही, वह था अशोक सेकसरिया का अभिभावकत्व। वे सामयिक वार्ता को संभालने के लिए पटना आए, तो वाराणसी और मुजफ्फरपुर में नहीं रहते हुए भी कलकत्ता से ही उसे संभालते रहे।

सामयिक वार्ता 1998 में दिल्ली आ गई। आधुनिक साजसज्जा, तकनीक के साथ वह नियमित प्रकाशित होती रही। इसके कई ऐसे अंक निकले जिन्हें आज भी याद किया जाता है। कई बार इसे इतनी बेचारगी के साथ गुजरना पड़ा कि बिल्कुल अनाथ और निरीह सी लगी। अगर पटना को इसका स्वर्णीम काल कहा जाए तो दिल्ली में सबसे नीचले पायदान तक आने का रिकॉर्ड रहा। सामयिक वार्ता 2012 इटारसी से प्रकाशित हुई।

इटारसी में कई राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर सामयिक वार्ता के अहम अंक निकले। यहां उसके कलेवर और साज-सज्जा में शानदार बदलाव हुए, साथ ही वह मासिक की बजाय द्विमासिक हो गई। तकरीबन दो ही साल हुए होंगे कि सामयिक वार्ता को संभाल रहे सुनील का 2014 में निधन हो गया। इस स्थिति में उसे वाराणसी लाया गया। इसी बीच उसके स्वामी-प्रकाशक राजेंद्र विंदल गुजर गए। सामयिक वार्ता वाराणसी में 2019 तक चली। इसी साल वह फिर दिल्ली आ गई। स्वामी-प्रकाशक व संपादक की कानूनी प्रक्रिया को पूरा कर उसका एक अंक निकला था कि देश-दुनिया कोरोना जैसी महामारी की चपेट में आ गई। इस महामारी में ही उसके डिजिटल तरीके से कई महत्वपूर्ण अंक निकले। महामारी का दौर खत्म हो गया है। समाजवादी विचारधारा की वाहक इस पत्रिका को पहले की तरह प्रभावशाली बनाने के लिए पाठकों-लेखकों की हर सहयोग की जरूरत है।

आधुनिक टेक्नोलॉजी ने समाचार पत्रों तथा दूसरे संचार माध्यमों की क्षमता बढ़ा दी है। कोरोड़ो-अरबों लोगों की अभिव्यक्ता का ठेका एक समाचार पत्र ले सकता है। ऐसे समाचार पत्रों का संचालन सिर्फ सत्ताधारी या पूंजीपति कर सकते हैं। संचालन और अभिव्यक्ति – इन दो शब्दों का कुछ लोग एक ही अर्थ लगाते हैं। संचार आसान हो गया है तो कहते हैं अभिव्यक्ति आसान हो गई है। बात उलटी है। संचार माध्यमो के द्वारा सिर्फ उन सारे लोगों की अभिव्यक्ति बनी रहेगी, जिनकों संचार माध्यमों के मालिक चुन लेंगे। बड़े समाचार पत्रों ने छोटे पत्रों की अभिव्यक्ति छीन ली है। अब जो स्थानीय पत्र होते हैं, वे बड़े पत्रों के स्थानीय संस्करण जैसे ही होते हैं। अलग अभिव्यक्ति हो नहीं सकती। पुरानी टेक्नोलॉजी में यह संभव था कि सत्ता में रहे बगैर भी समाजवादी, साम्यवादी, ग्रामोद्योगवादी, नास्तिकवादी दृष्टिकोण की पत्रिकाएं समाज में प्रतिष्ठित हो सकती हैं। अब सिर्फ अपने समर्थकों के बीच ही उनका वितरण सीमित रहता है। तात्कालिक राजनीतिक प्रश्नों को छोड़ कर हर चीज पर सारे प्रतिष्ठित समाचार पत्रों का स्वर एक जैसा होता है।

–किशन पटनायक, अक्टूबर 1988 (विकल्पहीन नहीं है दुनिया से साभार)

हमारे सपने और भूलें और अब 2024 के आम चुनाव की चुनौती

महेश विक्रम

आजादी के लिए संघर्ष के साथ ही एक परंपराग्रस्त रूढ़िवादी समाज के मानसिक परिवर्तन की अपेक्षा और उद्देश्य से हुए महात्मा ज्योतिबा फुले, महात्मा गांधी, बाबा साहेब अंबेडकर और अनेक समाज और राष्ट्रचिंतकों और नेताओं के प्रयास एवं आंदोलन से हम सभी मायने में एक जागरूक समतावादी और सहिष्णु राष्ट्र के निर्माण का स्वप्न देखा था। आजाद भारत का संविधान उसी स्वपन को आकार देने का घोषणा पत्र है। इसमें हमारी उत्कृष्ट सांस्कृतिक परंपराओं को संजोए रखते हुए आधुनिक शिक्षा के स्तर और एक सुनियोजित आर्थिक वातावरण के साथ एक आत्मनिर्भर और सबल राष्ट्र के निर्माण को कल्पना निहित थी। सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित और उपेक्षित समूहों और समुदायों का लक्ष्य कर उनके उत्थान के विशेष प्रयास भी इसमें सम्मित थे। परंतु इसके लिए इन सभी उपक्रमों की पर्याप्तता और सघन सतत प्रयास और कार्यक्रम सभी कुछ होना अनिवार्य था। और सबसे बड़ी आवश्यकता थी उस दिशा में सत्यनिष्ठ जिजिविषा का बना रहना।

लेकिन हुआ क्या! हमारे आधे-अधूरे प्रयासों और फिर हताशाओं से ग्रस्त होते हुए कठिन परंतु वास्तिक पथ से विचलन और शार्टकट सरल मार्ग अपनाए जाने ने स्थिति को और जटिल बपना दिया। हम पूंजीवाद के छद्मपूर्ण जाल में जा फंसे। थोड़ा पीछे जाए तो महात्मा गांधी द्वारा साध्य के लिए साधन की पवित्रता के आदर्श के समानांतर समाजवादी अंतरविरोध से उपजित सचिन सान्याल, चंद्रशेखर आजाद और सरदार भगत सिंह जैसे बलिदानियों के उग्र क्रांतिकारी प्रयासों का भी अपना अलग वजूद बना रहा था। स्वतंत्रता आंदोलन के समय ही गांधी के आदर्श से प्रेरित समाजवादियों ने कांग्रेस से भीतर ही कांग्रेस सोशलिस्ट समूह (1933) का निर्माण कर लिया था। बाद में नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने अपना अलग रास्ता चुन लिया। आजादी प्राप्त होने के साथ ही अपने समाजवादी राष्ट्र के स्वप्न को सत्ता की चौखट तक पहुंचाने के लिए गांधीवादी समाजवादियों ने नरेंद्र देव, आचार्य कृपलानी, जयप्रकाश, एसएम जोशी, अशोक मेहता, युसूफ मेहर अली, राममनोहर लोहिया आदि के नेतृत्व में कांग्रेस से अलग होकर अपना अलग दल बना लिया। समाजवादियों का संविधान सभा में शामिल न होना कितना उचित था या नहीं, यह प्रश्न हमेशा विचारणीय रहेगा। लेकिन राष्ट्र के नवनिर्माण के विषयों का नीति निर्देशक सिद्धांतों तक ही सीमित रह जाना इसका प्रकट परिंणाम कहा जा सकता है।

तथापि हमारे संविधान के द्वारा लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना तथा विचार और वाणी की स्वतंत्रता एक बढ़ा कदम था। जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में एक आधुनिक राष्ट्र के निर्माण हेतु उठाए गए सींमित समाजवादी कदमों के रूप मे दलितों को आरक्षण, जमींदारी उन्मूलन, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, सार्वजनिक क्षेत्र में शिक्षा और स्वास्थ्य के उपक्रम, वैज्ञानिक, तकनीकी और औद्योगिक विकास के कुछ आधारभूत प्रयासों के महत्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता। लेकिन नेहरू को दक्षिणपंथियों और मध्यममार्गियों के बीच छोड़ना कितना उचित था! यह भी विचारणीय है। जयप्रकाश की निराशा उन्हें संन्यास मार्ग की ओर ले गई और उनका साम्राज्यवादी स्वप्न भूदान और सर्वोदय आंदोलन तक सीमित हो गया। समाजवाद को भारतीय संदर्भ में कहीं अधिक गहराई से व्याख्यायित करने वाले पचास और साठ के दशक के सर्वाधिक प्रखर समाजवादी चिंतक और नैता राममनोहर

लोहिया की अधीरता नेहरू-कांग्रेस विरोध पर आधारित होती गई और उनके गैर कांग्रेसवाद के नारे में मधुलिमये की असहमति के बावजूद हाशिए पर पड़े दक्षिणपंथियों को भी साथ लेकर संविद सरकारों का प्रयोग और उनसे उपजित निराशाओं ने समाजवादियों के लिए एक नई चुनौती पैदा कर दी। इंदिरा सरकार द्वारा प्रीवी पर्स की समाप्ति, बैंकों और कोयला खदानों का राष्ट्रीयकरण समाजवादी दिशा में कुछ बड़े कदम जरूर थे। परंतु भ्रष्टाचार के प्रश्न से विचलित होकर आपातकाल की घोषणा एक बड़ी दुर्घटना बनी और राष्ट्र तानाशाही के संकट से ग्रस्त हुआ। इसी का बड़ा प्रतिवाद राजनीतिक संन्यास से बुलाए गए जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में संपूर्ण क्रांति के नारे और युवा संघर्ष वाहिनी के निर्माण में हुआ। इसने राष्ट्र को एक दूसरी क्रांति का आभास दिलाया और जनता पार्टी की स्थापना के साथ एक बार फिर से समाजवादी दिशा में राष्ट्र के नवनिर्माण की आशाएं जगा ली गईं।

अनेक रूढ़िवादी मध्यममार्गी और समाजवादियों के बीच खींचतान का स्वाभाविक परिणामा केवल जनता पार्टी के प्रयोग की अफसलता हुई बल्कि इसने समाजवादियों के स्वप्न पर लंबे समय के लिए ग्रहण लगा दिया। मधुलिमये की आपत्तियों के बावजूद समाजवादियों का उसमें विलय आत्मघाती सिद्ध हुआ। समाजवादी पुनः कोई स्वतंत्र और स्पष्ट पहचान बनाने में विफल रहे। उनमें दुर्भाग्यपूर्ण बिखराव होता दिखाई दिया और उनके अनेक धड़े मंडल राजनीति और दिशाविहीन आंदोलन तक सीमित होकर रह गए। दक्षिणपंथियों को पुनः उभरने का मौका मिला। समाजवादियों द्वारा किसान संगठन, समता संगठन आदि के एकाकी आंदोलन जरूर चलते रहे लेकिन इसी बीच कमंडल का उभार और डंकल का आगमन राष्ट्र की एकता और संप्रभुता के लिए एक गंभीर संकट के रूप में प्रकट हुआ।

जनता पार्टी की दिशाहीनता के समय से ही आशंकित किशन पटनायक जैसे समाजवादियों ने इन्हीं चिंताओं का समाधान स्वतंत्र रूप से चल रहे जनांदोलनों में खोजना चाहा और इसी उद्देश्य के साथ समाजवादी जन परिषद की स्थापना हुई। पुनः जनांदोलनों के समन्वय के प्रयास – एनएपीएम इसी का प्रतिफल रहे। दूसरी ओर हमारा लालायित मध्यम वर्ग और कारपोरेट आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण के दौर का हर संभव लाभ उठाने के लिए बेचैन था। कारपोरेट के लिए दिशाहीन और मतिभ्रमित मध्यम वर्ग और हताश-निराश आम जन को सांप्रदायिक नारे के साथ सत्ता पर काबिज होने की क्षमता रखने वाले दल के साथ खड़े होने में आसानी हुई। दक्षिणपंथी सांप्रदायिक राजनीति के उभार के कुछ अन्य समकालीन देशी और अंतरराष्ट्रीय कारण भी रहे हैं जिसमें समाजवादी आंदोलन का कमजोर पड़ना बड़ा कारण है।

वर्तमान संकट गंभीर है – देश भयंकर आर्थिक संकट में है। व्यवसाय बिखर रहे हैं। सार्वजनिक संपत्तियां और उद्यम – रेल, बंदरगाह, हवाई अड्डे यहां तक कि प्रतिरक्षा सामग्री का निर्माण भी, तेजी से निजी कंपनियों के हवाले किया जा रहा है। रोजगार नहीं है। मंहगाई बेलगाम है। 80 प्रतिशत से अधिक जनता मुफ्त राशन पर निर्भर है। आयात-निर्यात का बेहिसाब घाटा और डॉलर के सामने रुपये का लगातार होता अवमूल्यन चिंतनीय है। शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का निजी हाथों में चलते जाना उनका देश के आम लोगों की पहुंच से बाहर होते जाना है। सरकारी सुरक्षा, संरक्षण और सुविधाएं सभी कुछ सत्तासीन दल के झूठे प्रचार और आकंठ भ्रष्टाचार का माध्यम बनी हुई है। देश की सीमाएं असुरक्षित हो चुकी हैं।

सांवैधानिक संस्थाओं और व्यवस्थाओं की अवहेलना और उनका दुरुपयोग आम हो चुका है। मीडिया सरकार का भोपू बन चुका है। सत्ताधारी दल और उसके सहयोगी कारपोरेट



द्वारा कब्जा लिया गया है। विरोधियों और प्रश्न उठाने वालों के साथ देशद्रोहियों जैसा व्यवहार हो रहा है। अल्पसंख्यकों से दुराव और उनकी नागरिकता पर प्रश्न उठाने की बहुसख्याधारित मुहीम राष्ट्र की एकता को भीतर ही भीतर तोड़ रही है। दलित, आदिवासी, मजदूर, किसान और स्त्री सभी असहाय और अरक्षित हैं। नई पूंजीवादी शिक्षा नीति के विरोध तथा छात्र, मजदूर आदि के आंदोलन अत्यंत एकाकी या समाप्तप्राय है। क्षेत्रीय दल आत्मकेंद्रित और व्यक्तिवादी है। किसी समाजवादी राष्ट्रीय स्वप्न से उनका कोई लेना-देना नहीं है। किसान आंदोलन ने अवश्य ही कुछ मूलभूत प्रश्नों को उठा कर समाजवादियों और वास्तविक राष्ट्र चिंतकों में एक आशा जगाई है। लेकिन अब यह तय हो चुका है कि वर्तमान में सत्तारूढ़ दल को हटाए बिना पूरी तरह बेपटरी हो चुके हमारे राष्ट्र को पुनः किसी साकारात्मक दिशा में मोड़ना और इस भयानक संकट से उबारना बिल्कुल संभव नहीं होगा जबकि स्वयं संविधान का बना रहना भी संदिग्ध है।

इसी संकट और चुनौती के बीच 2024 के लोकसभा चुनाव का समय नजदीक आ चुका है। तो समता और धर्मनिरपेक्षता का स्वप्न संजोए रही समाजवादी शक्तियां अब क्या सोच रही हैं! इस संकट की भयावकता को ध्यान में रख कर क्या वह स्वयं कोई बड़ा जनांदोलन खड़ा कर सकती है! जनता को अपने किसी क्रांतिकारी लेकिन यथार्थपरख घोषणा पत्र से अपने पीछे आने का आह्वान कर सकती है ! अथवा, वर्तमान में व्याप्त जनांदोलनों से कोई संगठनात्मक सरोकार बना सकती है! अथवा, अपने वैशिष्ट्य और अस्तित्व को संभाल कर रखते हुए आधी अधूरी समझ पर ही आधारित किसी तात्कालिक लेकिन प्रभावी राजनीति विकल्प (दल या दलीय गठबंधन) और उनके अभियानों की सहयोगी बन सकती है! समाजवादी राष्ट्र भक्तों को यह अभी सोचना होगा और उसके कुछ प्रभावी और यथार्थपरक उपक्रम भी करने होंगे।

लंबे समय तक व्यापक वर्ग संघर्ष जाति व्यवस्था की आंशिक किंतु कारगर काट पैदा कर सकता है। वर्ग संघर्ष बहुत संकीर्ण भी हो सकता है क्योंकि वर्ग जातियों की तरह अनेक हैं। सही सोच और लंबी राजनीति के साथ अगर कोई किसान संघर्ष शुरू हो तो वह ऐसा व्यापक दीर्घकालीन संघर्ष हो सकता है। दुर्भाग्य से समाजवादियों और गांधीवादियों के किसान आंदोलन अल्पकालीन रहे हैं और कम्युनिस्टों के आंदोलन इस कदर संकीर्ण रहे कि किसानों का एक बड़ा वर्ग उनसे बाहर ही रहा। मजदूर आंदोलनों या संकीर्ण किसान आंदोलनों में देश या समाज को शामिल करने की जरूरत नहीं होती। ये आंदोलन देश या समाज के दूसरे पहलुओं को प्रभावित किए बिना पूरे आवेग के साथ जारी रह सकते हैं। जबकि एक व्यापक किसान आंदोलन पूरे ग्रामीण समाज को अपने में समेट लेगा और उसकी जगह से पुराने सामाजिक-सांस्कृतिक ढांचे में बदलाव होगा या आंदोलन अधूरा ही खत्म हो जाएगा।

-**किशन पटनायक**, समता एरा विशेषांक, जनवरी-फरवरी-मार्च 1984

(संभावनाओ की तलाश से साभार)

नफरत की राजनीति और स्त्री प्रश्न

निशा शिवूरकर

औरत के अधिकार मुद्दा हमेशा धर्म, जाति और पितृसत्ता से जुड़ा रहा है। ये तीनों औरतों के खिलाफ रहे हैं। पितृसत्ता सांप्रदायिक राजनीति का अविभाज्य हिस्सा है। पितृसत्ता और सांप्रदायिकता का एकसाथ मिला कर औरतों का जीना मुश्किल कर देता है। औरतों के खिलाफ अत्याचार बढ़ते हैं। सांप्रदायिक दल सत्ता में आने के बाद पितृसत्ता का गौरवीकरण बढ़ता है। पिछले ढाई सौ साल के प्रगतिशील आंदोलन के संघर्ष के कारण औरतों को समानता का अधिकार मिला। साल 2014 में देश की केंद्रीय सत्ता में भारतीय जनता पार्टी आई, तब से स्त्रियों के अधिकारों पर संकट निर्माण हुआ है।

उत्तर प्रदेश के अजय सिंह बिष्ट, संसद सदस्य रहे साक्षी महाराज जैसे लोग हिंदू समाज के औरतों को ज्यादा बच्चे पैदा करने के लिए खुले आम संबोधित कर रहे हैं। इसी तरह की अपील जर्मनी के तानाशाह हिटलर ने नाजीवाद के नाम से किया था। ऐसी स्थिति में औरतों को सिर्फ बच्चे पैदा करने की मशीन के रूप में दर्जा दिया जाता है। एक स्वतंत्र व्यक्ति, सोचने, समझने वाले व्यक्ति के रूप में औरतों को दर्जा देने के विचार को अस्वीकार करने का माहौल खड़ा किया जाता है।

राष्ट्रीय महिला आयोग ने सितंबर 2021 के प्रथम सप्ताह में जनवरी-अगस्त 2021 में आयोग के तरफ आए महिला हिंसाचार के मामलों की संख्या प्रकाशित किया है। साल 2020 की तुलना में महिला अत्याचार की घटना 46 प्रतिशत बढ़ गई है। इसमें आधी घटनाएं उत्तर प्रदेश की हैं। इसी काल में महिला आयोग के पास 19 हजार 953 मामले दर्ज हुए। साल 2020 में यह संख्या 13 हजार 618 थी।

भाजपा के राज में महिला सुरक्षित नहीं, यह वस्तुस्थिति नजरअंदाज नहीं करनी चाहिए। रॉयटर्स, लंदन यह वृत्त संस्थान की रिपोर्ट के अनुसार साल 2016 में बलात्कार की 40 हजार मामले दर्ज हुए। साल 2012 की तुलना में 60 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई है।

सबसे दुखद बात यह है कि साल 2014 के बाद बलात्कार करने वाले अपराधी के समर्थन में भाजपा नेता, मंत्री गण रास्ते पर आए। कश्मीर के कथुआ गांव में हुए छोटी बच्ची के साथ अत्याचार की घटना के बाद हिंदू एकता मंच ने अपराधी के समर्थन में मोर्चा निकाला। उस मोर्चा में उस समय के मंत्री लालसिंग और चंद्र प्रकाश गंगा शामिल थे। उन्नाव, हाथरस की घटना के बाद भी यही हुआ।

हमारे देश में साल 2014 के पहले ऐसा कभी नहीं हुआ। यह सत्ता और धर्मांधता का परिणाम है। देश के सामने बहुत बड़ा सांस्कृतिक संकट खड़ा है। इसका मुकाबला देश के लोकतांत्रिक समाजवादी विचारों के लोगों को साथ मिल कर करना चाहिए।

पिछले कई सालों से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ प्रभावित संगठनों की ओर से देश में लव जिहाद, गोवंश रक्षा कानून, तीन तलाक, समान नागरिक संहिता, मंदिर-मसजिद, हिजाब आदि विषयों को लेकर देश में मुस्लिम और अन्य अल्पसंख्यकों को खिलाफ नफरत फैलाने का षडयंत्र खड़ा किया गया है। मुस्लिम समुदाय को निशाना बनाया गया है। लव जिहाद और गोरक्षा कानून के नाम पर हिंदू जनजागरण समिति, बजरंग दल, विश्व हिंदू परिषद आदि संगठन के हाथ में हथियार दिया गया है। नफरत की राजनीति ने झुंड को कानून को हाथ में लेने की छूट दी है। सत्ता का इस झुंड को समर्थन है।

विद्वेष की राजनीति का सबसे बड़ा खतरा स्त्रियों पर है। फरवरी 2022 में 'बुली बाई अप' और 'सुली डिलस अप'



की बात सामने आई। राजसत्ता के खिलाफ बिना डरे साहस से लिखने वाली, बात रखने वाली लेखिका, कलाकार मुस्लिम समाज की धर्मशील औरतों के फोटो प्रदर्शित करके उनकी ऑन लाइन नीलामी का ऐलान किया गया। औरतों को जलील करने का, उनके स्वाभिमान को ठेस पहुंचाने का यह घृणित अपराध है। उसी तरह विभिन्न धर्मियों में नफरत फैलाने का कारनामा है। औरतों को दुख और वेदना देना अपराध है। इस अपराध में 18-21 के पढ़ने वाले छात्र भी शामिल हैं। इन छात्रों ने सोच-समझ कर मुस्लिम महिलाओं के सम्मान के ठेस पहुंचाई है। यह बड़ा षडयंत्र है। इसके पीछे हिंसा की राजनीति है। हमारे देश के सांवैधानिक संरचना के सामने यह संकट है।

साल 2002 में गुजरात में हुए दंगे के दौरान अहमदाबाद में भीड़ ने पांच महीने की गर्भवती बिलकिस बानो के साथ सामूहिक बलात्कार किया था। उसकी तीन साल की बेटी की बेरहमी से हत्या कर दी गई थी। इस अत्याचार के खिलाफ बिलकिस बानो लड़ीं। ग्यारह दोषी व्यक्तियों को सीबीआई की विशेष अदालत ने आजीवन कारावास की सजा सुनाई। कुछ महीने पहले गुजरात सरकार ने सजायाफ्त व्यक्तियों की रिहाई का निर्णय लिया। जेल से बाहर आने के बाद अपराधियों को फूलमाला पहनाई गई। मिठाई बांटी गई। बिलकिस बानो फिर से असुरक्षित हो गई है। मामला अभी सर्वोच्च न्यायालय में चल रहा है। अपराधी खुले आम घूम रहे हैं।

कर्नाटक का हिजाब का मामला, कई राज्यों में बन रहे लव जिहाद के कानून नफरत फैलाने के हथियार बन गए हैं। 'तीन तलाक' के नाम पर मुस्लिम औरतों को सुरक्षा देने का बहाना बना रही मोदी सरकार के राज में देश की सभी धर्मों की औरतें असुरक्षा का अनुभव कर रही हैं।

मजहब के नाम पर स्त्रियों का बंटवारा शुरू है। कोई मजहब आपस में वैर करना नहीं सिखाता। महिला चाहे किसी धर्म की हो, वह सहिष्णुता और शांति के वातावरण में ही निर्भय होकर रह सकती है। सभी धर्मियों की एकता और धर्म निरपेक्षता नारी मुक्ति आंदोलन को बल देती है।

हमें महात्मा गांधी के दिखाए पथ पर चलना चाहिए। गांधी जी ने कहा था, 'अगर महिलाएं खुश और शांति से रहना चाहती हैं तो उन्हें अपनी जाति और धर्म से परे जाना चाहिए। एक ही भगवान ने हम सब को बनाया है। सभी स्त्री-पुरुष इस देश के देश के नागरिक हैं। महिलाओं को अपने धर्म को मानवता की कसौटी पर कसना चाहिए।' यही हमारी दिशा होनी चाहिए। आज के सांप्रदायिक और नफरत फैलाने वाले माहौल से महिलाओं को मिल कर लड़ना चाहिए। यह महिलाओं की जिम्मेदारी है। तभी वे अपने घरों, बच्चों और देश को बचा सकती हैं।

आदिवासियों का संकट

रंजीत कुमार महली

झारखंड में डराने की राजनीति थमने का नाम ही नहीं ले रही है। इस राज्य के बनने के पहले से ईसाई मिशनरियों को आदिवासियों के लिए खतरा बताया जाता रहा है और आज भी यही बताया जा रहा है। इस राज्य के मुस्लिमों के विरोध में आदिवासियों को भड़काने के लिए लव जिहाद की तर्ज पर जमीन जिहाद (लैंड जिहाद) का शिगूफा छोड़ा गया है। जब से झारखंड बना, तब से एक नई बात यह देखी जा रही है कि आदिवासियों को हिंदू और हिंदुत्व का भय दिखाया जाने लगा है। राजनैतिक प्रयोजनों के निमित्त इस प्रकार का धार्मिक भयादोहन भविष्य में जारी रहने की ही संभावना है।

एक प्रश्न यह भी है कि आदिवासियों को क्या सचमुच में ईसायत, इस्लाम और हिंदुत्व से ही खतरा है? इस संकट से क्या धर्मांतरण कानून से नहीं निपटा जा सकता? या फिर कोई अन्य शक्ति है जो स्वयं अदृश्य रहते हुए आदिवासियों के खिलाफ ईसायत, इस्लाम और हिंदुत्व को खड़ा करके अपना स्वार्थ साध रही है? ये सारे प्रश्न आपस में एक-दूसरे से गुंथे हुए हैं। शायद ही कोई यह इंकार करे कि आदिवासी और आदिवासियत संकट में है।

आज आदिवासियों के संकट या खतरे का स्वरूप बदल चुके हैं। मौजूदा सदी में उनका सामना पूंजीवादी भौतिकवाद से है। यह पहले के सभी संकटों या खतरों से ज्यादा खतरनाक व घातक है। यह अप्रकट और अप्रत्यक्ष है। यह अदृश्य संघर्ष आदिवासियों के शरीर से नहीं, मन-मतिष्क से लड़ी जा रही है।

पूंजीवादी भौतिकवाद या बाजारवाद आदिवासियों के घर पर विकास व भौतिकता के आकर्षण के रूप में दस्तक दे रहा है। आदिवासियों के लिए इसको समझना काफी मुश्किल है। आदिवासियों को कुछ युवजन समझने लग गए तो उन्हें भटकाने के लिए किसी समुदाय विशेष को उनके खिलाफ खड़ा करने में पूंजीवादी, बाजारवादी शक्तियों को कोई गुरेज नहीं। ऐसी शक्तियों की ही यह चालाकी है कि आदिवासी युवजन आदिवासी बनाम गैर आदिवासी, स्थानीय बनाम बाहरी, मेरी भाषा बनाम तेरी भाषा के मसले में वे उलझे रहें। आगे भी जब ऐसी शक्ति को आदिवासियों से आंच आएगी तो वह इसी तरह के संवेदनशील मसलों को आगे कर अपना



बचाव करेगी और भ्रम की स्थिति पैदा करेगी। आदिवासी समाज अपने शत्रुओं का जम कर और आखिर तक मुकाबला करने वाला समझा जाने वाला समुदाय बिना मुकावला किए बाजारवाद से हार जाने वाला समाज कहा जाने लगेगा। यह कितना दुखद है कि आदिवासी नेतृत्व को दूसरे धर्म-समुदायों से संभावित खतरे तो दिखाई पड़ रहे हैं लेकिन पूंजीवाद-बाजारवाद का खतरा दिखाई नहीं दे रहा है। यह तो उनकी बाजारवाद के प्रति मौन स्वीकृति ही कही जाएगी।

आदिवासी समाज में पिछले कई दशकों से जो पतन करने वाला बदलाव नहीं हो पाया था, पूंजीवादी-बाजारवाद ने वह महज दो-तीन दशक में कर दिखाया है। पूंजीवादी-बाजारवाद आदिवासियों की जीवन शैली, जीवन मूल्य, इतिहास व दर्शन की उनकी अपनी समझ को तेजी से बदलते रहने में कामयाब होता नजर आ रहा है। जनजातीय भाषाएं दम तोड़ रही हैं, कई जनजातियां विलुप्त होने के कगार पर हैं, असुर बिरहोर तो नाम के लिए बचे हैं। आदिवासी सारंगी बजाते हुए जड़ी-बूटी बेचते नहीं दिखते। मालार समुदाय द्वारा गोदना गोदने का काम अब आधुनिक टैटु बाजार ने छीन लिया है। पारंपरिक कला और उससे संबद्ध धंधे बाजारवाद के सामने टीक नहीं पा रहे है। समझ के साथ कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। अर्थशास्त्रीय भाषा के मुताबिक यह बाजारजनित अदृश्य बेरोजगारी है। झारखंड में असुर बिरहौर और मालार समुदाय की विलुप्ति धर्मांतरण की वजह से नहीं, बाजारवाद की वजह से है। पूंजीवादी-बाजारवाद आदिवासियों को मूल समाज और जीवन से बेदखल कर रहा है।

उदारीकरण की वजह से आदिवासी समुदाय की प्राकृतिक निर्भरता सीमित होती जा रही है और उसकी जगह पर बाजारवाद उन पर हावी हो रहा है। यों कहें की वे प्राकृतिक क्षेत्र से विस्थापित किए जा रहे है और बाजारवाद के चंगुल में फंसने के लिए बाध्य हो रहे हैं। बाजारवाद उनके लोक मान्यताओं और त्योहारों को प्रभावित करने लगा है और उनके लोक व्यवहार व लोकाचार में बदलाव आने लगा है। उन्हें सादगीपन से उपभोक्तावाद के दलदल में तेजी से ढकेला जा रहा है। बाजारवाद की मंशा आदिवासियों के शोषण और आदिवासियत का विनाश की है। ऐसी स्थिति पैदा की जा रही है कि आदिवासी प्राकृतिक उत्पादों पर निर्भर नहीं रह सके बल्कि ब्रांडेड कंपनियों के उत्पाद के उपयोग के लिए मजबूर हों। उन्हें देशी ज्ञान और निज भाषा से अलग-थलग कर विदेशी ज्ञान और भाषा की होड़ में डाला जा रहा है। बर्थडे, मैरेज एनिवरसरी, पिकनिक, गिफ्ट कल्चर को लोकप्रिय बनाया जा रहा है। समारोहों में लोक गायन व दूसरी परंपराएं आधुनिक डीजे, माइक, फिल्मी गाने, टेंट, बैंड, बुके के चलन के आगे दबी जा रही हैं। चिंता की बात तो यह भी है कि आदिवासी भी इन चीजों से इतने प्रभावित हो रहे हैं कि अपनी अच्छी चीजों को बाहियात मानने लग गए हैं।

आदिवासियत तो जड़ से उखाड़ने के लिए प्रतिभावान आदिवासियों को भुनाने बाबत उनका इस्तेमाल बाजारवाद के बढ़ावा या प्रभावशाली बनाने के लिए धड़ल्ले से किया जा रहा है। राजनीति में तो पहले से हो रहा है। प्रतिभावान आदिवासियों के नामों की लंबी सूची है। बाजारवादियों की नजर आदिवासियों पर है और वे प्रतिभावान आदिवासियों का इस्तेमाल अपने लिए कर रहे हैं। बाजारवाद के लिए विज्ञापन एक बड़ा औजार होता है। विज्ञापन में प्रतिभावान आदिवासियों के चेहरे दिखने लगे है और आदिवासी समाज उनका नाम जुवान पर रखने लगा है और उन्हें अपना आदर्श भी मानने लगा है। दूसरे शब्दों में कहें तो बाजारवादियों का आदिवासी समाज में प्रयोग कामयाब हो रहा है।

आदिवासी संस्कृति के आधार जल, जंगल और जमीन ही है। इनकी सुरक्षा में ही आदिवासियों की सुरक्षा निहित है। जल, जंगल और जमीन पर सबसे ज्यादा खतरा आधुनिक औद्योगिकीकरण और बाजार की भोगवादी संस्कृति से है। जिस चौथी औद्योगिक क्रांति की दुनिया और भारत में जोर-शोर से चर्चा हो रही है, वह आदिवासियो के लिए सबसे ज्यादा घातक साबित होने वाला है। आदिवासियो को इसके विरोध में पूरी ताकत से खड़े होने की जरूरत है।

समाजवादी जन परिषद का 13वां राष्ट्रीय सम्मेलन

अभिमन्यू

सजप का 13 वां राष्ट्रीय सम्मेलन पटना में 2022 में 5-6 नवंबर को हुआ। कोरोना संकट के कारण तीन साल बाद यह सम्मेलन हो पाया। इसे 2021 में ही होना था।

पटना के रूकनपुरा में बिहार दलित विकास समिति के परिसर में देश भर के परिषद के प्रतिनिधियों की मौजदूगी में पहले दिन झंडे के आरोहरण, राष्ट्रगान और क्रांति गीतों के गायन के साथ सम्मेल का उद्‌घाटन हुआ। परिसर को परिषद के झंडे, बैनर और पार्टी के स्वर्गीय साथियों मकसूद अली, डा. स्वाति, डा. संतू भाई, जुगल किशोर रायबीर आदि के नाम पर तोरण-द्वारों व मंच के नामकरण से सम्मेलन में उत्साह का संचार हुआ।

उद्‌घाटन के बाद खुले स्वागत सत्र की शुरुआत ओडीशा के साथियों (राजकिशोर, बिंबाधर और उपेंद्र) द्वारा गाए क्रांति गीतों से हुई। इस सत्र में सजप के राष्ट्रीय पदाधिकारियों के साथ विशिष्ट अतिथि के रूप में जन मुक्ति संघर्ष के झारखंड के वरिष्ठ साथी अरविंद अंजुम व मंथन, साथ ही सजप के संस्थापक नेताओं में से एक स्वर्गीय किशन पटनायक की पत्नी वाणी मंजरी दास मंच पर मौजूद थीं।

सजप के संगठन सचिव रंजीत राय के संचालन के तहत, सबसे पहले बोलते हुए सजप के निवर्तमान राष्ट्रीय महामंत्री अफलातून ने पिछले सम्मेलन से लेकर अभी तक के राजनैतिक घटनाक्रम का विश्लेषण करते हुए अपनी बात रखी। इस दौरान उभरे बड़े आंदोलनों और राजनैतिक प्रश्नों में से नागरिकता (संशोधन) कानून (सीएए) के विरोध में शाहीन बाग आंदोलन और उससे प्रेरित संघर्ष की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि महिलाओं ने बिना किसी बड़े राजनैतिक दल के समर्थन के इस आंदोलन को मजबूती दी। हालांकि स्वतंत्र रूप से जिन लोगों ने इस आंदोलन को समर्थन दिया उनमें से कई जेल गए और कुछ अभी भी जेल में हैं। वहीं दूसरी ओर दिल्ली में सांप्रदायिक हिंसा को भड़काने में जिन भाजपा नेताओं की स्पष्ट भूमिका थी, उन पर कोई कार्रवाई नहीं हुई। इसके अलावा किसान आंदोलन की जबरजस्त सफलता का जिक्र करते हुए अफलातून ने कहा कि इस ऐतिहासिक आंदोलन में सरकार को नए कृषि कानून को वापस लेने पर मजबूर किया।

अफलातून ने कहा कि दो बार से भाजपा ने अपने बल बूते पर केंद्र में जो सरकार बनाई है, वह मुख्य रूप से बड़े पूंजीपतियों के लिए काम करती हैं। बंदरगाह, हवाई अड्डे के ठेकों से लेकर दालों आदि के व्यापार पर भी अडानी का एकाधिकार है जिसके निजी विमान पर वर्तमान प्रधानमंत्री विदेश यात्रा करते रहे हैं। छत्तीसगढ़ और राजस्थान में अडानी के बड़े निवेश की योजनाओं व संभावनाओं के चलते वहां की सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी ने अडानी पर सीधा हमला बंद कर दिया है।

लोकतंत्र के लिए चुनौती पेश करती हुई नीतियों में से इलेक्ट्रोरल बांड, जिसके तहत बड़ी राजनैतिक पार्टियों, विशेष कर भाजपा को चंदा देने वालों के नाम और राशि गुप्त रखी जा सकती है, को अनैतिक और भ्रष्टाचार के स्रोत बताते हुए अफलातून ने इसका कड़ा विरोध किया। साथ ही कहा कि फिलहाल चुनाव में उम्मीदवार के खर्च की तो सीमा निर्धारित है लेकिन पार्टी के खर्च की कोई सीमा नहीं है। यह प्रावधान भी भ्रष्ट और बड़ी पूंजी के हित में है और इसे बदला जाना चाहिए। इसी तरह राजनैतिक दलों को बिना एफसीआरए के पालन के विदेशी चंदा लेने के लिए भाजपा और कांग्रेस ने



संविधान संशोधन करवाया था, जो कि लोकतांत्रिक परंपरा के खिलाफ है।

सजप की ओर से चुनावों में फर्स्ट पास्ट द पोस्ट व्यवस्था की बजाय अनुपातिक प्रतिनिधित्व की मांग रखते हुए, अफलातून ने उच्च शिक्षा को बरबाद और धनिक वर्ग के लिए आरक्षित करने की साजिश के तहत 57 केंद्रीय विश्वविद्यालयों की प्रवेश परीक्षा एकसाथ ऑनलाइन कराए जाने का उल्लेख किया, जो गरीब वर्ग के बच्चों के लिए मुश्किलें पैदा करती हैं।

उन्होंने आने वाले समय में पार्टी से सरकार के खिलाफ संघर्ष तेज करने और आंदोलनों में बढ़-चढ़ कर हिस्सेदारी करने का आह्वान किया।

इसके बाद बोलते हुए सजप के बिहार के राज्य अध्यक्ष नरेंद्र कुमार ने स्थानीय इकाई की ओर से सभी प्रतिनिधियों का स्वागत किया और पिछले तीन वर्ष में पार्टी के कामकाज का लेखाजोखा दिया। अनेक चुनौतियों का सामना करने के बावजूद इकाई सम्मेलन में नई ऊर्जा लेकर जाएगी और संघर्ष तेज करेगी, ऐसा उन्होंने आश्वासन दिया।

इसके बाद विशेष रूप से आमंत्रित अरविंद अंजुम ने कहा कि वैकल्पिक राजनीति के मंच पर आकर वे प्रसन्न हैं। उन्होंने वर्तमान दौर को 'बेरहम पूंजीवाद' के दौर के रूप में परिभाषित किया और उदाहरण के तौर पर पूंजीपति एलन मस्क का जिक्र किया, जिसने ट्यूटर का अधिग्रहम करते ही एक चौथाई कर्मचारियों की छंटनी कर दी और बारह घंटे के श्रम दिवस की वकालत की है। साथ ही गिग श्रमिकों, जैसे खाना पहुंचाने वालों या ऐप के लिए टैक्सी चलाने वालों के शोषण पर ध्यान आकर्षित करते हुए उन्होंने कहा कि इनकी संख्या तीन करोड़ से ज्यादा हो गई है। लेकिन शोषण चरम पर है और मूलभूत अधिकारों और सुविधाओं से भी यह वर्ग वंचित है।

अरविंद ने भारत में आरएसएस के फासीवाद को हिटलर और मुसोलिनी से भी ज्यादा खतरनाक ठहराया, क्योंकि यह संगठित रूप से सौ से भी अधिक वर्षों से सक्रिय है और भयावह रूप धारण कर रहा है। चूंकि विचारधारा और दर्शन के आधार पर दमन ज्यादा खतरनाक है, उसके मुकाबले भी दार्शनिक स्तर पर करना होगा, ऐसा अरविंद ने कहा। उन्होंने याराना पूंजीवाद और याराना सांप्रदायवाद के व्यापक खतरे को भांपते हुए उसका मुकाबला आपसी मतभेदों से ऊपर उठ कर करने का आह्वान किया।

जनमुक्ति संघर्ष वाहिनी के ही मंथन ने कहा कि आज हमें भारतीय समाज के सकारात्मक तत्वों को उभारने की जरूरत है, जो सौ वर्षों से हमें हिंदू राष्ट्र बनने से रोकने में सफल रहे। उन्होंने सांप्रदायिक और विषाक्त राजनीति को रोकने की जरूरत रेखांकित करते हुए व्यापक एकता बनाने की वकालत की। इसके तहत हमें उन विंदुओं को चिह्नित करने की जरूरत है जिनके बल पर भाजपा को हटाया जा सकता है, जैसे रोजगार, जाति का प्रश्न, बहुजन एकता, अल्पसंख्यकों की एकता आदि। यह काम हमें 2024 के चुनाव में ही करना होगा और उसके लिए कमर कसनी होगी।

अतिथि वक्ता वाणी मंजरी दास ने कहा कि एक देश-एक भाषा जैसी नीतियों को थोपने पर देश इसे बर्दाश्त नहीं करेगा और हिंदुत्व, हिंदू, मुस्लिम आदि पहचानों में भेदभाव करने की बजाय हमें सभी को मानव मात्र मान कर व्यवहार करना चाहिए।

अध्यक्षीय वक्तव्य में सजप के निवर्तमान राष्ट्रीय अध्यक्ष लिंगराज आजाद ने क्रांति की भूमि के रूप में बिहार को संबोधित किया और याद किया कि कैसे बोधगया आंदोलन और संघर्ष वाहिनी के साथ साझा संघर्ष ने उन्हें संघर्ष से जुड़ने के लिए प्रेरित किया। साथ ही दल के विकास में किशन पटनायक और वाणी जी के योगदान को उन्होंने सामने रखा। उन्होंने कहा कि जो समूह तात्कालिक सफलता के लिए काम करते हैं वे ज्यादा दिन नहीं टिकते, इसलिए सजप को दीर्घकालिक विचार लेकर चलना होगा। पार्टी को अपनी वैचारिक पूंजी को लेकर आगे बढ़ना होगा और सत्ता की राजनीति के बरक्स जनवादी राजनीति का झंडा बुलंद करना होगा।

सत्र के अंत में संचालक रंजीत राय ने परिचर्चा का सार सामने रखते हुए धन्यवाद ज्ञापन किया।

अगले सत्र में निशा शिवूरकर की अध्यक्षता में चंद्रभूषण चौधरी ने पार्टी का राजनीतिक और आर्थिक प्रस्ताव सदन के सामने रखा। इस सत्र का संचालन नीता चौबे ने किया। प्रस्ताव पर परिचर्चा में भाग लेते हुए महेश विक्रम, मनसंतोष, रंजीत राय, जोशी जैकब, शिवाजी गायकवाड़, इकबाल अभिमन्यु, नीरज, जयनारायण महतो, गंगा प्रसाद, सुरेश नारिकुन्न, शैलेश कुमार समेत कई वक्ताओं ने अपनी बात रखी। चंद्रभूषण चौधरी ने प्रस्ताव में संशोधन बाबत सुझावों, टिप्पणियों का स्वागत किया और उन सुझावों, टिप्पणियों में से कुछ को शामिल किया। सदन ने प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित किया।

इसके बाद पार्टी ने शोक प्रस्ताव के तहत पिछले तीन सालों में जिन सदस्यों और सहमना साथियों का निधन हो गया था, उन्हें याद किया। इनमें उत्तर प्रदेश से डा. स्वाति, मकसूद अली, बिहार से डा. संतू भाई संत, अवध बिहारी शरण, अर्जुन कुमार सिंह, दिल्ली से प्रो. बलबीर सिंह, मध्य प्रदेश से श्रीमती उमा खरे, सुनीत दुवे, संजय सिंह, लखन लाल मालवीय, तुन्ने दादा, भूरे लाला मांझी और केरल से केपी शाजी और मंगलट्टू राघवन को श्रद्धांजलि अर्पित की गई। साथ ही पार्टी के आरंभिक दौर में जुड़े रहे संजीव साने, विश्वनाथ बागी और सोमनाथ त्रिपाठी को भी याद किया गया।

दूसरे दिन प्रथम सत्र में नीरज सिंह ने कार्यक्रम की रूपरेखा बताई और सजप के आनुषांगिक संगठन किसान मजदूर संगठन की बैठक का उल्लेख किया जो सम्मेलन स्थल पर ही संपन्न हुई। इसके बाद प्रो. महेश विक्रम की अध्यक्षता में गंगा प्रसाद ने सजप का सामाजिक प्रस्ताव सदन के सामने रखा। इस सत्र का संचालन फागराम ने किया। प्रस्ताव में हुई परिचर्चा में रंजीत राय, स्मिता, जोशी जैकब, भारत भूषण, अफलातून, नीता चौबे, अतुल, राम दयाल, जगनारायण महतो आदि ने बात रखी और प्रो. महेश विक्रम के अध्यक्षीय वक्तव्य के बाद सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया गया।

इसके अगले सत्र में पार्टी का आंतरिक चुनाव संपन्न हुआ जिसमें सर्वसम्मति से एडवोकेट निशा शिवूरकर को अगले दो साल के लिए पार्टी का राष्ट्रीय अध्यक्ष और लिंगराज आजाद को राष्ट्रीय महामंत्री चुना गया। इसके साथ ही राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्यों के रूप में कमल कृष्ण बनर्जी, मलिन चंद्र वर्मन, रंजीत राय, गंगा प्रसाद, अशोक रायबीर (पश्चिम बंगाल), अतुल कुमार और जगनारायण महतो (दिल्ली), शिवाजी गायकवाड (महाराष्ट्र), शैलेश कुमार, अफलातून, महेश विक्रम, रामकेवल चौहान, नीता चौबे (उत्तर प्रदेश), नीरज सिंह, सुधांशु प्रसाद और नवल किशोर प्रसाद (बिहार), जोशी जैकब, कुरेश नारीकुन्नी (केरल) और बिंबाधर बैठारू (ओडीशा) का सर्वसम्मति से चुनाव हुआ। चुनाव के तुरंत बाद हुई राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में निम्न पदाधिकारियों को मनोनीत किया गया। चंद्रभूषण चौधरी और रंजीत राय को राष्ट्रीय उपाध्यक्ष, फागराम, सुरेश नारिकुन्नी, अतुल कुमार और नीरज सिंह को राष्ट्रीय सचिव, जगनारायण महतो को कोषाध्यक्ष, अफलातून को संगठन मंत्री मनोनीत किया गया।

संघर्ष को तेज और संगठन को मजबूत करने के संकल्प के साथ सम्मेलन छह नवंबर की शाम समाप्त हुआ।

सजप के राष्ट्रीय सम्मेलन में सर्वसम्मति से पारित सजप का राजनीतिक-आर्थिक प्रस्ताव

सजप का पिछला राष्ट्रीय सम्मेलन जून,2019 में हुआ था। अपने संविधान के मुताबिक सजप हर दूसरे साल अपना राष्ट्रीय सम्मेलन तथा अगले दो वर्षों के लिए पदाधिकारियों तथा राष्ट्रीय कार्यकारिणी का चुनाव करती रही है। लेकिन 2020 की जनवरी से शुरू कोविड -19 की वैश्विक महामारी तथा सरकारी प्रतिबंधों के कारण पिछले साढ़े तीन वर्षों में हम अपना राष्ट्रीय सम्मेलन और अन्य बैठकें सदेह नहीं कर सके। इसलिए इस सम्मेलन का संगठन के लिए बहुत महत्व है।

पिछले सम्मेलन से केवल दो सप्ताह पहले 2019 में लोकसभा तथा चार राज्यों के आम चुनावों के नतीजे घोषित हुए थे। उस चुनाव के नतीजों ने आजाद भारत के सभी चुनावों की श्रृंखला की तरह ही देश की दोषपूर्ण चुनाव-पद्धति की खामियों को उजागर किया। भारतीय जनता पार्टी को बहुमत से बहुत कम 37.36 प्रतिशत वोट मिले। पर लोकसभा में उसे बहुमत से काफी ज्यादा 303 (54.71 प्रतिशत) सीटें मिल गईं। 2014 के लोकसभा चुनाव में भी भाजपा केवल 31 फीसदी मत पाकर 82 सीटें (51 प्रतिशत) जीत कर संसद में बहुमत में आ गई थी।

यहां हम फिर एकबार दोहरा दें कि भारत में एफपीटीपी (फर्स्ट पोस्ट दी पोस्ट : सर्वाधिक मत लाने वाले को अन्य उम्मीदवारों के सारे अधिकार मिल जाते हैं) चुनाव-पद्धति चल रही है। सजप काफी पहले से ही इस चुनाव पद्धति की जगह अनुपातिक चुनाव पद्धति को लाने की मांग करती रही है।

तत्काल चुनाव सुधार की हमारी यह मांग अति महत्वपूर्ण है। क्योंकि पिछले आठ वर्षों की घटनाएं यह सिद्ध कर चुकी है कि हमारी दोषपूर्ण चुनाव प्रणाली देश के शासन को तानाशाही की ओर ले जाने का सबसे प्रमुख कारण है। इस चुनाव पद्धति के कारण विश्व इतिहास में कई अन्य देशों में एफपीटीपी चुनाव द्वारा बनी सरकारें तानाशाही में बदल गई थी। यथा हिटलर, मुसोलिनी और वर्तमान में रूस की पुतिन की सरकार। इसी कारण दुनिया के नब्बे देशों में पिछले 80 वर्ष में अपनी चुनाव प्रणाली को अनुपातिक पद्धति में बदल लिया है।

कोविड महामारी के कारण पिछले साढ़े तीन साल देश और दुनिया में कई कठिन चुनौतियों और अति दुखद हालातों का समय रहा है। दिसंबर 2019 में चीन के वुहान महानगर में कोविड-19 के संक्रमण की महामारी तेजी से फैली और बड़ी संख्या में गंभीर बीमारी और मौतों की शुरुआत हुई। चीन की सरकार ने महामारी को रोकने के लिए सभी मानवीय गतिविधियों पर रोक लगा दी और जनता को अपने घरों में बंद कर दिया। साथ ही चीन सरकार ने महामारी के विषाणु पर शोध कर उसकी डीएनए संरचना को सारी दुनिया के लिए दिसंबर 2019 में ही प्रकाशित किया तथा संक्रमण रोकने के टीके के लिए शोध किया। इन प्रकाशनों के आधार पर दुनिया की कई बड़ी कंपनियों ने अपने देश की सरकार की आर्थिक मदद से टीका पर त्वरित शोध किया यथा ब्रिटेन की एस्ट्रा जेनिका, अमरीका की फाइजर तथा मोडरना, जर्मनी की वायोएनटेक और रूस की स्पुतनिक वी वगैरह।

संक्रमण रोकने के लिए चीन और पश्चिमी देशों ने जनवरी 2020 की शुरुआत से ही अंतरराष्ट्रीय यात्रा पर कई किस्म की जांच और रोक लगाई। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू एच ओ) ने 24 जनवरी 2020 को ही एक सलाह जारी कर सभी अंतरराष्ट्रीय यात्रियों के शरीर का तापमान नापने को कहा। 11 फरवरी की सलाह में बीमार पाए गए यात्रियों को क्वारेन्टाइन करने को कहा गया। उस समय भारत में प्रति दिन आने वाले संक्रमित यात्रियों की संख्या दो-चार ही रही होगी। लेकिन भारत सरकार ने इस महामारी को समझने और रोकने के मामले में पूरे नकार स्तर का अज्ञान और लापरवाही दिखाई। विश्व स्वास्थ्य

संगठन की चेतावनी के बावजूद महामारी के प्रति अमरीकी राष्ट्रपति ट्रम्प और प्रधानमंत्री मोदी की महामारी के प्रति सम्मिलित नकार, वाहवाही लूटने का लालच और लापरवाही की पराकाष्ठा 24 फरवरी 20 को सवा लाख जनता की अहमदाबाद में 'नमस्ते ट्रम्प' रैली में हुई। बाद की जांच में पाया गया कि अहमदाबाद में संक्रमित पाए गए ज्यादातर लोगों ने उसमें भाग लिया था। रैली ने देश-विदेश में कोविड को फैलाने का गंभीर अपराध किया। भारत सरकार ने उच्चतम न्यायालय को मई 2021 में दिए गए अपने हलफनामे में स्वीकार किया कि उसने कोविड के टीके के शोध के लिए कोई अनुदान या सहायता नहीं दी। पर बाद में सरकार और भाजपा अपनी तारीफ में यह कहती रही है कि भारत ने जल्द दो टीके बना कर विज्ञान में उन्नत देशों मे अपनी जगह बना ली।

सरकारी लापरवाही से संक्रमण जब तेजी से बढ़ा तो सरकार के हाथ-पैर फूल गए। बिना किसी तैयारी के प्रधानमंत्री मोदी ने 24 मार्च 20 की शाम में अचानक पूरे देश में तालाबंदी (लॉकडाउन) की घोषणा कर दी। देश में खराब शासन और जन उत्पीड़न का यह सबसे क्रूर चेहरा था। इस तालाबंदी के कारण करोड़ों गरीब जनता खासकर प्रवासी मजदूरों को अपार उत्पीड़न और दुख झेलने पड़े। इन तथ्यों से सारा देश और दुनिया वाकिफ है। विभिन्न स्वतंत्र अध्ययनों का निष्कर्ष है कि भारत में करीब 50 लाख लोगों की मौत हुई। पर सरकार उससे बहुत कम केवल पांच लाख मौतों के आंकड़े देती रही है।

एक अच्छी लोकतांत्रिक सरकार की ये पांच न्यूनतम कर्तव्य होते हैं – एक, जल्द से जल्द देश में आर्थिक, सामाजिक, इलाकाई और लैंगिक समता लाना। आमदनी और संपत्ति की गंभीर विषमताओं को धन का फिर बंटवारा कर संभव समता के अनुपात में लाना। दो, देश की सरहदों की सुरक्षा करना। साथ ही अन्य प्रकार की सुरक्षा यथा भोजन, स्वास्थ्य, रोजगार, प्राकृतिक आपदाओं से तथा शांतिपूर्ण वर्तमान और भविष्य की सुरक्षा। तीन, संविधान में वर्णित धाराओं और संविधान की आत्मा के अनुरूप शासन चलाने के साथ ही जरूरी सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक औरप राजनीतिक बदलाव को तेजी से पूरा करना। चार, देश के अंदर कानून और व्यवस्था बनाए रखने में राज्य सरकारों की मदद करना। साथ ही देश का संघीय स्वरूप को बनाए रखना। शासन के लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के लिए बने तीन संविधान, 73,74 और 1996 के पेसा (पीइसीए) कानून को प्रभावी बनाने में राज्य सरकारों को जरूरी आर्थिक और प्रशासनिक मदद देना। पांच, पूरी आबादी को अच्छी कृषि, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा देने के लिए राज्य सरकारों को जरूरी संसाधन मुहैया कराना।

अब हम देखें कि इन पांच कर्तव्यों में केंद्र की मोदी सरकार ने पिछले तीन-चार वर्षों में क्या और कैसा किया। भाजपा, मोदी सरकार और तथाकथित बौद्धिक लोग भी भारत देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीडीपी) को विकास के मानक के रूप में दोहराते रहते हैं। यह ध्यान में रखना है कि अभी विश्व में अमरीकी डॉलर ही एकमात्र स्थिर मुद्रा है। इसलिए सभी आर्थिक आंकड़े उसी में बताए जाते हैं। अन्य सभी देशों की मुद्रा में कमोबेश उतार-चढ़ाव होता रहता है। इसलिए उनमें वर्णित आंकड़ो में बड़ी गलती हो सकती है। आपने मोदी और भाजपा – विपक्ष के अन्य नेताओं से बार-बार ट्रिलियन शब्द सुना होगा। अभी भारत का जीडीपी करीब साढ़े तीन ट्रिलियन (साढ़े तीन लाख करोड़ डॉलर) है। जिसका विश्व में पांचवां स्थान है। सभी सरकारें इसकी वाहवाही लूटती रही हैं।

लेकिन इस प्रचार के दौरान बड़ी चालाकी से प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय पैदावार (अर्थात् प्रति व्यक्ति जीडीपी) को छिपा लिया जाता है। देश की समृद्धि का सही सूचक यही होता है। भारत की विशाल करीब 140 करोड़ आबादी में औसत प्रति व्यक्ति सालाना आय केवल ढाई हजार डॉलर है, जो करीब डेढ़ लाख रुपये होता है। धनी देशों में यह आय करीब 40 से 70 हजार डॉलर है। इस सीढ़ी पर भारत विश्व में 142 वें पायदान पर है। अर्थात् हम अति दरिद्रों की श्रेणी में आते हैं। चीन में यह आय हमसे सात गुणा ज्यादा है। बांग्लादेश भी विकास कर भारत से पांच पायदान ऊपर 137 वें स्थान पर जा चुका है। पड़ोसी मलेशिया और इंडोनेशिया भी हमसे ऊपर है।

अब हम अमीरों और गरीबों के बीच गैर बराबरी को देखें। देश में सबसे अच्छी आमदनी वाले ऊपर के 10 प्रतिशत लोग कुछ कमाई (वार्षिक आमदनी) का 57 प्रतिशत ले लेते हैं। वहीं कम कमाई वाले आधे (अर्थात् 50 प्रतिशत) लोगों को केवल 13 प्रतिशत ही मिलता है। सबसे धनी एक प्रतिशत लोगों के पास

राष्ट्रीय संपत्ति का एक तिहाई (33 प्रतिशत) है। मध्य वर्ग को शामिल कर सबसे धनी 10 प्रतिशत जनता के पास देश की तीन चौथाई से भी ज्यादा 77 प्रतिशत संपत्ति है। पिछले साढ़े तीन वर्षों में वार्षिक आमदनी और कुल संपत्ति की एक खाई हर एक साल बढ़ती ही रही है। केंद्र की मोदी सरकार ने इरादतन अपनी नीतियों से इस गैर बराबरी को बढाया है।

केवल एक सेठ गौतम अडानी मोदी सरकार से यार पूंजीपति का रिश्ता बना कर एक साधारण व्यापारी से उड़ कर दुनिया का दूसरा-तीसरा धनी आदमी बन गया। उसको और अंबानी को सरकारी पूंजियों का उपहार मिलने के बारे में आप सब विभिन्न स्रोतों से पढ़ते-सुनते ही रहे हैं।

जलवायु परिवर्तन और वैश्विक तापमान बढ़ने की संभावना करीब निश्चित ही है। बड़े इलाकों में सूखा-बाढ़ बढ़ने और समुद्र तटों के पानी डूब जाने का बड़ा खतरा है। इन आपदाओं से जनता की सुरक्षा के लिए कोई प्रभावी नीति केंद्र सरकार ने नहीं बनाई है।

अब क्षेत्रीय (राज्यवार) गैर बराबरी को देखें। राष्ट्रीय औसत प्रति व्यक्ति सालाना ढाई हजार डॉलर की आय के मुकालबले प्रति आदमी जीडीपी में तीन सबसे गरीब राज्य हैं।

बिहार – सालाना 661 डॉलर

उत्तर प्रदेश – सालाना 934 डॉलर

झारखंड – सालना 1081 डॉलर

इन राज्यों की जनता में भी अमीरी और गरीबी की आय में अभी पहले बताई गैर बराबरी का अनुपात वैसा ही है। बिहार के सबसे गरीब तबके के एक आदमी को सालाना करीब दो सौ डॉलर अर्थात् महीने में केवल 1300 रुपये में पूरे साल जीना होता है। इसको सुधारने वास्ते मोदी सरकार ने कुछ भी नहीं किया, बल्कि और बिगाड़ा है। आप सब जानते होंगे कि कोविड महामारी में हजार तकलीफें उठा कर घर लौटे मजदूरों को अपने गांव-घर में भी बेरोजगारी और दुखद गरीबी मिली। तुरंत ही वे सब बेचैन होकर घर-परिवार छोड़ वापस बड़े शहरों की तकलीफ भरी जिंदगी की ओर भागने लगे।

सरहदों की सुरक्षा में मोदी सरकार बिल्कुल झूठी और नकारा साबित हुई है। पिछले चार वर्षों में भारत-चीन सीमा के लद्दाख, अरुणाचल और भूटान खंडों में चीन की सेना द्वारा आगे बढ़ कर घुसपैठ, भारतीय जवानों की हत्या, कई तरह के निर्माण और पूरे गांव बसा देने की जग जाहिर घटनाएं होती रही हैं। मोदी सरकार चीन सरहद पर इन हमलों पर बयान देने से लगातार भागती रही है। कायदन केंद्र सरकार और स्वयं प्रधानमंत्री को इस पूरे मामले पर संसद मे एक श्वेत पत्र लाना चाहिए था। पर सरकार तालमटोल के बयान देती रही और उसका विशाल गोदी मिडिया इस हार में भी मोदी की बहादुरी का गुणगान करती रही।

अक्टूबर 2019 में चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग और मोदी की ममलापुरम में गलबहियों के केवल सात महीने बाद चीनी सेना ने गलवान में विभत्स क्रूरता से 20 भीरतीय जवानों की हत्या की। अभी सिंतबर 22 में मोदी फिर शी जिनपिंग से समरकंद में मिले पर चीनी सरहद पर कब्जे हुए इलाके पूरे तौर पर लौटाने की कोई बातचीत नहीं हुई। अभी अक्टूबर 22 में हुए चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के बड़े सम्मेलन में गलवान हमले के चीनी कमांडर को शामिल किया गया। उसे शी जिनपिंग की बड़ी उपलब्धि बताया गया और हमले का वीडियो दिखाया गया।

एक तरफ चीनी सामानों का बहिष्कार करने की भाजपा नेताओं की खोखली अपीले आती रहीं और दूसरी तरफ चीन से 90 अरब डॉलर का आयात अबाध चलता रहा। भारत द्वारा चीन को केवल 14 अरब डॉलर का निर्यात हुआ – हमारा घाटा सालाना 75 अरब डॉलर।

भारत सरकार ने इसे पाटने और आयात-निर्यात का अनुपात कम करने के लिए क्या किया? याद रखें कि किसी एक देश पर ऐसी आयात निर्भरता अपने देश की सुरक्षा के लिए बहुत कमजोर कड़ी होती है।

भाजपा सरकार की अग्निपथ योजना द्वारा फौज में नियमित

जवानों की जगह केवल चार साल के लिए रंगरूटों की भर्ती करना देश की सुरक्षा में भीषण खतरा पैदा करेगी। रंगरूटों को युद्ध मोर्चे और संवेदनशील रक्षा प्रतिष्ठानों में तैनात करने के केवल चार साल बाद बिना पेंशन के फौज से निकाल दिया जाएगा। यो पीड़ित और अपमानित बेरोजगार युवा सारी गोपनीय सूचनाओं को आम कर देंगे। वैसी हालत में वे कोई भी देश विरोधी कदम उठा सकते हैं।

जनता को अन्य सुरक्षाएं देने में भी केंद्र सरकार निकम्मी और विफल रही है। विश्व भूख सूचकांक (ग्लोबल हंगर इनडेक्स) में 121 देशों में भारत की जगह बहुत नीचे 107 की है। खाद्य सुरक्षा के मामले में साल दर साल देश की हालत सुधर नहीं रही है। एक प्रतिष्ठित संस्था सीएमआईई के अनुसार देश में बेरोजगारी की दर 7.8 प्रतिशत है। अगर राज्यवार देखें तो इसमें भी बिहार (11.4 प्रतिशत) और झारखंड (12.2 प्रतिशत) ज्यादा ही खराब है। रोजगार पाए लोगों की मजदूरी या वेतन इतना कम है कि उनमें भी ज्यादातर को बेरोजगार ही मानना चाहिए। कृषि क्षेत्र में सबसे ज्यादा 42 प्रतिशत लोग रोजगार पाते हैं। छोटे कुटीर उद्योगों में काफी लोगों के रोजगार की संभावना है। पर उन्हें तो सरकारी नीतियों ने मार ही डाला है। जो नियोजित हैं उन्हें भी भविष्य में काम में लगे रहने की कोई सुरक्षा नीति सरकार ने नहीं बनाई है।

जलवायु परिवर्तन और वैश्विक तापमान बढ़ने की संभावना करीब निश्चित ही है। बड़े इलाकों में सूखा-बाढ़ बढ़ने और समुद्र तटों के पानी में डूब जाने का बड़ा खतरा है। इन आपदाओं से जनता की सुरक्षा के लिए कोई प्रभावी नीति केंद्र सरकार ने नहीं बनाई है।

मोदी सरकार आदतन संविधान की धाराओं के गलत अर्थ पेश करती है, जो संविधान की आत्मा के विरुद्ध जाती है। इसके लिए उसने विभिन्न सांवेधानिक तथा अन्य संस्थाओं के चरित्र को लगातार बिगाड़ा है। इसमें संसद, चुनाव आयोग, सीबीआई, ईडी, एनआईए, एनसीबी, रिजर्व बैंक, सरकारी विभागों का उच्च प्रशासन, राज्यों के राज्यपाल, सरकारी कंपनियों (उपक्रमों) – बैंकों के उच्च प्रबंधकों, दिल्ली पुलिस, विश्व विद्यालयों वगैरह सभी शामिल हैं।

भाजपा की केंद्र और राज्य सरकारों ने सीबीआई, ईडी, एनआईए, राज्य पुलिस और एनसीबी द्वारा हजारों पत्रकारों, विपक्ष के कार्यकर्ताओं-नेताओं, बौद्धिकों, लेखकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और अल्पसंख्यक आम नागरिकों पर बिना उचित साक्ष्य के ही दमनकारी प्रावधानों के तहत मुकदमें लगाएं गए और उन्हें जेल में बंद किया है। यह पूरी बदनीयति से शासन का आतंक फैलाने के लिए किया जाता है। किसी भी प्रदर्शन, धरना, सभा वगैरह के पहले ही नेताओं को घर में रोका जाता है या हवालात में दिनभर बंद रखा जाता है। अल्पसंख्यकों और विपक्षी लोगों के घरों, दफ्तरों और प्रतिष्ठानों को अकारण बुलडोजरों से ढाहने का गैर कानूनी आतंकवादी काम किया जा रहा है। निर्भिक मीडिया, अखबारों, इंटरनेट पोर्टलों पर छापे डाले जा रहे हैं, बैंक खाते रोके जाते हैं और झूठे मुकदमे लादे जा रहे हैं। सोशल मीडिया में डाले केवल एक पोस्ट के लिए लोगों पर मुकदमे किए जा रहे हैं। साथ ही सरकार आईटी सेक्टर की निगरानी के लिए कानून बनाने से भाग रही है। लचर कोर्ट व्यवस्था के कारण सालों साल उन्हें जमानत तक नहीं मिलती है। यहां सजप के मित्र और सहकर्मी चौरासी वर्षीय फादर स्टैन स्वामी की अकारण गिरफ्तारी, जेल में उत्पीड़न, जमानत न देना और हत्या जैसी मौत का खास उल्लेख जरूरी है।

सामाजिक न्याय के लिए जरूरी जातिवार जनगणना को नहीं करने पर भाजपा सरकार अड़ी हुई है। संविधान ने कानून व्यवस्था बनाने-रखने का अधिकार मुख्यतः राज्य सरकारों को दिया है। इसमें उनकी मदद करना और जरूरी संसाधन देना केंद्र सरकार की जिम्मेदारी है। पर भाजपा की केंद्र सरकार लगातार वे अधिकार अपने हाथ में लेकर राज्य सरकारों को और देश की संघीय व्यवस्था को कमजोर करती रही है।

तीन संविथान संशोधन – 75, 74 और पेसा (पीइएसए) राज्य सरकारों को जिम्मेदारी और अधिकार देते हैं कि वे क्रमशः ग्रामीण, शहरी और आदिवासी क्षेत्रों में प्रदेश से नीचे स्तर पर लोकतांत्रिक निकायों बनाएं और सुदृढ़ करें, ग्राम, प्रखंड, जिला पंचायतें, नगर पालिका, नगर निगम, ग्राम सभा वगैरह। राज्य सरकारें अपने अधिकारों और संसाधनों में कमी होती देख कर डरती हैं और नीचे की इकाइयों को मजबूत नहीं करती हैं। समाज में बहुतेरे मुखर लोग भी लोकतांत्रिक नेतृत्व को बदनाम कर अफसरशाही और पुलिस राज को और मजबूत करने की

वकालत करते हैं।

सजप के सामने यह चुनौती है कि वह जनता को लोकतंत्र में विश्वास दिलाए और उसके प्रसार का आंदोलन चलाए। विपक्षी शक्तियों का सहकार और एकता इस दिशा में बड़ा कदम होगा। सजप उसमें सहयोग करने को कृत संकल्प है। कृषि और कृषि आधारित उद्योग के क्षेत्र पूरी तौर पर राज्य सरकारों के जिम्मे है। पर जून 2020 में केंद्र सरकार ने एक कृषि अध्यादेश जारी किया जिससे पूरी खेती किसानी बड़ी कंपनियों के हाथ में चली जाती। बड़ी जल्दीबाजी में महामारी के दुखद दिनों में सरकार ने तीन कृषि बिल लोकसभा में 18 सितंबर को पास कराए। 22 सितंबर को बिना उचित बहस कराए और अल्पमत में होते हुए सरकार ने इसे राज्यसभा से भी पास कराने की नौटंकी रची।

ये बिल यार पूंजीपतियों की सांठ-गांठ से बनाए गए थे। इसका सबूत है कि कानून बनने के कई साल पहले ही अडानी ने अनाज भंडारण और व्यापार के लिए जरूर कोठार-कारखाने बना लिए थे।

पर जल्द ही देश भर के किसानों ने एक ऐतिहासिक अहिंसक और क्रांतिकारी आंदोलन खड़ा किया, जो हमेशा देश के इतिहास में दर्ज रहेगा। किसानों का विरोध, बिल के पास होने के पहले ही अगस्त 2020 से शुरू हो गया था। ये विरोध सप्ताह दर सप्ताह ज्यादा तेज और व्यापक होते गए। प्रदर्शन, बंद, रेल रोको, रास्ता रोको सब बढ़ते ही गए। जल्द ही किसानों का विरोध दिल्ली और उसकी सभी सरहदों पर डेरा डालो, धरना, प्रदर्शन और सत्याग्रह के रूप में शुरू हुए और लगातार कायम रहे। घरों से दूर खुले मैदानों में और सड़कों के किनारे धूप, गर्मी, ठंड में पूरे साल भर लंबा यह सत्याग्रह किसानों के धैर्य, साहस और संगठन कुशलता की बड़ी मिशाल है। नवबंर 2021 में जब मोदी सरकार ने तीनों कृषि कानूनों को निरस्त करने की घोषणा की, तब वह उग्र आंदोलन स्थगित किया गया।

न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) को सरकार को बाध्यकारी कर्तव्य बनाने के कानून तथा अन्य किसान हितकारी विषयों के लिए 'संयुक्त किसान मोर्चा' के तहत आज भी यह आंदोलन चल ही रहा है। पर सरकार और उच्चतम न्यायालय दोनों एकतरफा कमिटी बना कर टालमटोल कर रहे हैं। जाहिर है कि सरकार यह कानून नहीं बनाना चाहती है।

सजप ने स्वयं और अपने सहमना व सहयोगी संगठनों 'किसान मजदूर परिषद' तथा 'राष्ट्रीय किसान समन्वय समिति' द्वारा स्वामीनाथन कमिटी की सिफारिश में न्यूनतम समर्थन मूल्य की गणना और कई अन्य धाराओं की त्रुटियों को वर्षो से उठाया है। संयुक्त किसान मोर्चा में किसान मजदूर परिषद भी शामिल है।

उत्तर बंगाल और असम में चाय की खेती और सारे देश में अनाज के साथ ही दलहन, तेलहन, गन्ना, दूध, सब्जियों, फलों, कपास, मछली, अंडा, मांस, मसाले सभी की किसानी तथा उनके मजदूर वर्षो से संकट में हैं। सजप उनकी सुरक्षा चाहती है और मांगों का समर्थन करती है। केरल में अडानी के बंदरगाह से मछुआरों और तटीय जनता की मुश्किलों के कारण विरोध चल रहा है। पर भाजपा और सीपी (मा) उस परियोजना का समर्थन कर रही हैं। वन और पर्यावरण नीतियों में जो बदलाव किए गए है वे आदिवासियों के हितों के विरुद्ध हैं। धड़ल्ले से वन क्षेत्रों में खदानो के पट्टे दिए जा रहे हैं और वनों की कटाई हो रही है। खेती क्षेत्र और किसानों-मजदूरों के हित के लिए संघर्षरत रहने को सजप प्रतिबद्ध है।

देश में शिक्षा की हालत पहले से ही बुरी रही है। कांग्रेस सरकार ने ही 2004 की शिक्षा नीति बना कर सार्वजनिक शिक्षा देने के कर्तव्यों से अपने को मुक्त कर लिया। मोदी सरकार की नीति शिक्षा में ज्यादा से ज्यादा निजीकरण लाने की रही है – प्राथमिक वर्ग से विश्वविद्यालय तक। सरकारी विश्वविद्यालयों में तो फीश की बढ़ोतरी चरम पर है। वंचित वर्गों और पिछड़े इलाकों के छात्रों के लिए प्रश्रय, छात्र वृत्तियां और आरक्षण को वह खतम करती जा रही है। दाखिले के लिए बड़ी राष्ट्रव्यापी, मेधा विरोधी 'ऑनलाइन' परीक्षाएं लाद दी गई हैं। इनकी वजह से कंप्यूटर, फोन, इंटरनेट, कोचिंग वगैरह से वंचित पिछड़े और देहाती इलाकों के बच्चों के लिए दाखिले के दरवाजे बंद कर दिए गए हैं।

कोविड महामारी के दौर में दो साल स्कूल-कालेज बंद रहे। वंचित वर्गों के बच्चे – युवाओं के लिए प्राइवेट कंपनियों और स्कूलों-कालेजों की 'ऑनलाइन' पढ़ाई संभव नहीं थी, नतीजन वे बुरी तरह पीछे छूट गए। इस नुकसान को पाटने के लिए कुछ नहीं किया गया।

देहाती दूर-दराज क्षेत्रों की विरल आबादी में स्कूलों में कम

बच्चे बता कर उन्हें बंद करने की नीति लाई गई है। अकेले झारखंड में 26 हजार ग्रामीण स्कूल बंद किए गए। अन्य राज्यों में भी स्कूल बंदी की संख्या उसी अनुपात में होगी। उन सबों को तत्काल फिर से खोला जाना चाहिए और शिक्षकों की बहाली की जानी चाहिए।

सार्वजनिन विस्तार से हरेक देशवासी को स्वास्थ्य सेवा देने में भी सरकारें विफल रही हैं। भाजपा सरकार ने तो इस जिम्मेदारी से हाथ बिल्कुल खींच लिये। उन्होंने यह काम निजी अस्पतालों और इंश्योरेंस कंपनियों को सरकारी पैसे देकर, मुनाफाखोरी और भ्रष्टाचार के लाखों नए केंद्र देश में खड़ा किया है। 'आयुष्मान भारत', 'अटल क्लिनिक', 'प्र.म.औषधि' आदि योजनाओं, सीजीएचएस, ईएसआईसी वगैरह में निगरानी का कोई सही इंतजाम नहीं है। इस सबों में व्यापक भ्रष्टाचार की सूचनाएं मीडिया में नियमित आती रही हैं।

एनीमिया, मलेरिया, तपेदिक (टीबी), कुपोषण, अंधापन, पानी-हवा से रोग वगैरह पर काबू पाने के लिए तो जन स्वास्थ्य की कोई सक्षम व्यवस्था अब तक बनी ही नहीं है।

5 अगस्त 2019 को भाजपा की केंद्र सरकार ने संसद में एक प्रस्ताव पास कर धारा 370 से मिली जम्मू कश्मीर - लद्दाख की विशिष्ट स्थिति (स्पेशल स्टेटस) को खतम कर दिया। यह जम्मू कश्मीर की विधानसभा को मिले निर्णायक अधिकारों का सरासर उल्लंघन था। वह भाजपा के मुस्लिम विद्वेषी चरित्र और धार्मिक उन्माद फैला कर चुनावी लाभ देने की खतरनाक चाल थी। महीनों-साल तक कश्मीर में फोन, इंटरनेट सेवा, जनता की साधारण आवाजाही को बंद कर, दर्जनों प्रमुख नेताओं को जेल भेज या नजरबंद कर दमन की क्रूर नुमाइश की गई। विभिन्न राज्यों – गोवा, पुडुचेरी, उत्तराखंड, हिमाचल, झारखंड, सिक्किम, अन्य सभी उत्तर पूर्व के राज्यों में जमीन की मिल्कियत और खरीद बिक्री पर कश्मीर जैसे ही कानून और प्रतिबंध हैं। पर कुटिल विद्वेष में सरकार ने केवल कश्मीर में ही बदले कानून लागू किए। भाजपा समर्थकों ने खुले बयान देकर कश्मीर को खरीदने और वहां की महिलाओं के अपमान का ऐलान किया। घृणा फैलाने की यह वीभत्स घटना थी। सजप ने जम्मू-कश्मीर में धारा 370 को वापस बहाल करने की मांग की है और अब भी उस पर कायम है।

शासक दल और पूंजीपतियों की सांठ-गांठ और आपसी लेन-देन का देश में पुराना सिलसिला रहा है। सरकार उन सेठों-उद्यमियों गुप्त और खुले रूप में बड़े फायदे देती रही है। बदले में पूंजीपति उस दल को चुनाव जीतने के लिए बड़ा पैसा दान देते हैं, जो अमूनन चोरी छिपे होता रहा है। जनता को यह मालूम नहीं होता है कि किन-किन के बीच इस बड़े पैसे का लेन-देन हुआ है।

भाजपा सरकार ने चुनावी बॉन्ड में गुप्त दान का प्रावधान लाकर चुनावी भ्रष्टाचार को कानूनी संरक्षण दे दिया और जनता को बिल्कुल अंधेरे में पहुंचा दिया। अब जनता को कुछ नहीं मालूम होगा कि किस सेठ या कंपनी ने किस दल को पैसे दिए। यह चुनावी भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा है। इसकी ताकत से भाजपा की जीत पहले ही आधी तय हो जाती है। पार्टियों के चुनाव खर्च पर सीमा न रखने, किसी भी सीमा तक धन हासिल करने, विदेशों से दलों को मिलने वाले चंदे की कोई जांच न करने के प्रावधान इस भ्रष्टाचार को कानूनी मान्यता देते हैं। सजप इन सभी नियमों की समीक्षा और पारदर्शिता लाने के बदलाव की मांग करती है।

चुनाव के पहले और बाद भी भाजपा अपने अकूत पैसे और ताकत के बल पर विपक्षी विधायकों को सैकड़ों-करोड़ की कीमत पर खरीद कर राज्यों में विपक्षी सरकारों को तोड़ती और अपनी सरकार बनाती है। उत्तर पूर्व के छोटे राज्यों के विधायक पहले से ही पूरी तरह केंद्र की सत्ताधारी पार्टी के साथ हो जाते रहे हैं। अभी वे सभी सरकार भाजपा के कब्जे में आ गई हैं। एएफएसपीए के द्वारा उत्तर पूर्व राज्यों में जनता का दमन अभी भी बरकरार है।

विभिन्न अनुमानों के मुताबिक अडानी की कंपनियों पर विभिन्न बैंकों का कर्ज दो से तीन लाख करोड़ रुपये के बीच है। जनता के पैसे से ही वह रेल स्टेशन, हवाई अड्डा और जनता / सरकार की अन्य संपत्तियों को खरीद कर दुनिया का दूसरा / तीसरा सबसे धनी आदमी बना है। केंद्र के शासन में बदलाव होने पर ऐसे यार पूंजीपति देश और नागरिकता छोड़ देते हैं। अडानी द्वारा कर्ज नहीं लौटाने की हालात में कई सरकारी बैंकों के डूब जाने का खतरा है।

भाजपा सरकार की विदेश नीति भी ढुलमुल और अस्पष्ट

रही है। पाकिस्तान के प्रति सरकार के बर्ताव के कारण केवल अपने देश में धार्मिक नफरत फैलाने की इच्छा रहा है। नागरिक मेलजोल के लिए संभव आपसी यात्रा, खेलकूद, फिल्म, साहित्य, कला, संस्कृति, धार्मिक पर्यटन वगैरह को भी नामुमकिन कर दिया गया है। पाकिस्तान में आई भीषण बाढ़ में भी मानवीय सहायता नहीं की गई। अफगानिस्तान, यूक्रेन पर रूस का साम्राज्यवादी हमला, निहत्थे नागरिकों के घर, अस्पताल, स्कूल-कालेज, बिजली-पानी सप्लाई को बर्बाद करने का युद्ध अपराध, हांगकांग में नागरिक अधिकारों का हनन, चीन मे उईगर समुदाय का उत्पीड़न, ताईवान पर चीन द्वारा हमले की तैयारी, चीन में शी जिनपिंग द्वारा शासन पर तानाशाही कब्जा, लातीनी अमरीका में वामपंथ का उदय, अंतरराष्ट्रीय व्यापार के शोषण प्रवर्तक नियम जैसे सारे महत्वपूर्ण मसलों पर भी सरकार अपना स्पष्ट रुख नहीं बना सकी।

चुनाव जीतने और देश की सत्ता – संसाधन पर काबिज रहने के लिए भाजपा देश में सांप्रदायिक ध्रुवीकरण, नफरत का वातावरण, अल्पसंख्यक और वंचित वर्गों पर हिंसक हमले, मस्जिद-मजारों को हथियाने, समान नागरिक कानून लाने की अफवाह, फिल्मों-साहित्य की नफरती व्याख्या पार्टी स्वयं और विभिन्न नामों से संगठित अपने गुर्गों द्वारा करती रही है। वोट बटोरने के लिए सरकार और भाजपा द्वारा हिंदू जनता के दिल में डर और असुरक्षा की भावना पैदा की जा रही है। इसमें केंद्र और प्रदेशों की भाजपा सरकारों का संरक्षण और सहयोग उन गिरोहों को मिलता रहा है।

मोदी सरकार ने 2014 में सत्ता में आने के बाद ही असम में लागू किए गए 'राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी)' वाली पुलिसिया उत्पीड़क कार्रवाई को पूरे देश में लागू करने की मंशा का प्रचार किया। 11 दिसंबर 2019 को भाजपा सरकार ने संसद से 'नागरिकता संशोधन कानून (सीएए)' पारित किया जिसमें पड़ोसी देशों से आए मुसलमानों के अलावा अन्य धर्म के ही लोगों को भारत की नागरिकता देने का प्रावधान किया गया। यह 1955 के नागरिकता कानून का दुष्टतापूर्ण संशोधन था। सरकार के इस पक्षपातपूर्ण इरादों के विरुद्ध देश भर में विरोध शुरू हुए। 15 दिसबर 2019 को दिल्ली के शाहीनबाग में मुख्यतः मुस्लिम औरतों की अगुवाई में एक अनवरत प्रभावशाली धरना शुरू हुआ, जिसमें सभी समुदाय के न्यायप्रिय लोगों ने शिरकत की। जल्द ही देश में दर्जनों शहरों में इसी स्वरूप के अनवरत प्रभावशाली धरने शुरू हो गए। ये सभी धरने 24 मार्च 2020 को कोविड के संक्रमण से बचने के लिए खतम किए गए।

शिक्षा संस्थानों, पुलिस बल, प्रशासन, मीडिया और अवर न्यायपालिका में ध्रुवीकरण का प्रयास तेजी से किया जा रहा है। यह जहर देश को टुकड़ों में तोड़ सकता है। सशक्त प्रयास के बावजूद इस जहर की सफाई में दशकों का समय लगेगा। भाजपा दल और सरकार की गलत नीतियों, खराब शासन और खराब बर्ताव के कारण पिछले चार वर्षों में कई क्षेत्रीय पार्टियों ने एकता की पहल की है। सजप इस पहल का समर्थन करती है। उम्मीद है कि ये दल आपस में जल्द विस्तृत विमर्श कर साझा नीतियों और कार्यक्रमों का खाका जनता के सामने लाएंगे।

देश में लोकतांत्रिक समाजवाद लाने के अपने दीर्घकालीन उद्देश्य को जल्द पूरा करने के लिए सजप अन्य एक लक्षीय आंदोलनों, सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक, मजदूर, किसान, धार्मिक सुधारवादी, शिक्षा सुधार, अकादमिक शोधरत वगैरह संगठनों से सहकार और संयुक्त कार्यक्रम करता रहा है। हमारी यह नीति और प्रयास आगे भी बरकरार रहेंगे। पिछले चार वर्षों में हम संगठन का विस्तार और जमीनी कार्यक्रम ज्यादा नहीं कर पाए हैं। अब वह तेजी से करने की जरूरत है।

इस प्रस्ताव में सजप के नजरिए से देश-दुनिया के हालातों का सर्वेक्षण किया गया है। सजप की मूलभूत और व्यापक विचारधारा पार्टी के दस्तावेजों और विमर्शों –कार्यक्रमों में दर्ज है। उन्हें ज्यादातर साथी जानते ही हैं। एक सवाल होता है कि सजप के आगे की राजनीतिक दिशा, आर्थिक विकास के लिए नीतियों का खाका और विस्तृत कार्यक्रम क्या होंगे? प्रस्ताव के ये पहलू इस सम्मेलन में विमर्श और अगली राष्ट्रीय कार्यकारिणी के विमर्शों से तैयार होंगे। आने वाले राज्यों के और 2024 के लोकसभा चुनावों में लोकतंत्र और लोकहित समर्थक सरकारें बनाना देश की जनता के लिए बड़ी चुनौती है। इसके लिए सजप अपनी पूरी ताकत लगा कर काम करेगी।

(अगले अंक में सामाजिक प्रस्ताव)

आदिवासी, देशज, बाहर के कौन

किशन पटनायक

(उत्तर बंगाल के अलीपुरद्वार जिले के तहत जटेश्वर में 6 दिसंबर को समता केंद्र के स्थापना दिवस के मौके पर समारोह आयोजित किया गया। उसमें मौजूद लोगों के बीच किशन पटनायक के इस लेख की प्रतियां वितरित की गई। इस लेख का बांग्ला अनुवाद भी वितरित किया गया। किशन जी का यह लेख सामयिक वार्ता के दिसंबर 2002 के अंक में छपा था, जिसे संभावनाओं की तलाश नामक किताब में भी इसे शामिल किया गया। समारोह में 'उत्तर बंग केंद्र शासितो अंचल/ पृथक राज्ये दाबीर प्रासंगिकता' पर चर्चा हुई। गौरतलब है कि इन दिनों उत्तर बंगाल के भाजपा के एक सांसद उत्तर बंगाल राज्य की मांग कर रहे हैं तो दूसरी तरफ भाजपा के वरिष्ठ नेता इस मांग को भाजपा की मांग मानने से इंकार कर रहे हैं। वास्तव में आम लोगों के बीच ऐसी कोई मांग ही नहीं उठ रही है। भाजपा के नेता वोट की राजनीति के तहत सुनियोजित ढंग के एक भ्रम की स्थिति पैदा करने में जुटे हैं। इसी के मद्देनजर उनकी पोल खोलने के लिए इस विषय पर चर्चा की गई। इस दिशा में किशन पटनायक का लेख भी स्पष्ट राय बनाने में मददगार है, इसलिए इस लेख को यहां रखा जा रहा है।)



अंग्रेजी में इंडीजेनस का शब्द का अर्थ देशीय देशज होता है। इसी अर्थ में इस शब्द का इस्तेमाल हम करते आए हैं। इसका अर्थ आदिवासी या आदिम अधिवासी से अधिक व्यापक होता है। लेकिन यूरोप का अनुभव सबके ऊपर थोपा जा रहा है। यूरोप का यानी गोरी जाति का अनुभव एक खास प्रकार का है। उनके लोग अमरीका, आस्ट्रेलिया आदि क्षेत्रों में जाकर बस गए और बड़े भूखंडों में उन्हीं का वर्चस्व हो गया। मुख्य लोग वे हैं, जबकि पुराने लोग देशज (इंडीजेनस) के रूप में चिह्नित हो रहे हैं। देशज लोग बिल्कुल हाशिए में चले गए हैं, मानो अमरीका या आस्ट्रेलिया उनका देश नहीं था।

इस अनुभव के ढांचे को भारत पर लागू करना गलत परिणामों को जन्म दे सकता है। आर्य बाहर से आए या नहीं, इस तरह के प्रश्न उठने लगते हैं। इस प्रश्न की एक कड़ी बन सकती है – मुसलमान बाहर से आए या नहीं, ईसाई बाहर से आए या नहीं आदि। इन प्रश्नों के वैचारिक विंदु बना कर नकारात्मक भावनाओं को तेज किया जा सकता है।

प्राचीन काल में राष्ट्रों के (अपेक्षाकृत स्थिर भौगोलिक सीमाओं को लेकर) बनने के पहले जनसमूहों का आवागमन विश्व के अधिकांश भूभागों में होता रहा है और उनके संघर्ष तथा समन्वय होते रहे – पहले संघर्ष, बाद में समन्वय। अगर आर्य कहीं से आए तो उसी काल में आए और देशीय हो गए। इसलिए यह सवाल उठाना उपयुक्त नहीं है कि आर्य बाहर से आए थे या नहीं। यह सवाल भी बेमानी है कि आज 'आर्य' कौन है और 'अनार्य' कौन है?

असली समस्या यह है कि भारत में जो कई प्रकार के जनसमूह आए हैं और सबके सब देशीय हैं, उनमें किस प्रकार के अलगाव हैं और उनमें समन्वय घटित हो रहा है या नहीं? रामायण-महाभारत से काफी कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। 'आर्य' कहलाने वालों ने एक जातिप्रथा विकसित कर ली। रामायण-महाभारत काल के उन आर्यों से भिन्न लोग

देश के बहुत बड़े भुखंड में थे, वे स्वतंत्र थे, कहीं-कहीं अधिक वैभवशाली और पराक्रमी थे। धीरे-धीरे ब्राह्मण-क्षत्रिय यानी जातिप्रथा वाले लोगों का बर्चस्व बढ़ता गया और दूसरों की संस्कृति गौण होने लगी। दोनों प्रकार के लोगों का मिश्रण दिखाई पड़ता है – महाभारत में बहुत ज्यादा समन्वय की यह धारा बौद्ध काल तक, छठी शताब्दी तक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। उसके बाद जातिप्रथा के नियम कट्टर होने लगे, उसकी एक सुदृढ़ व्यवस्था बन गई, जिसकी शुरुआत शुंग वंश या गुप्त काल में मानी जा सकती है। प्रारंभिक काम में जातिप्रथा ने शायद समन्वय को सहज बनाया होगा – किसी को द्विज और किसी को शूद्र का स्थान देकर अपना लिया होगा।

लेकिन परिपक्व होने के साथ-साथ जातिप्रथा न सिर्फ एक विषमता का ढांचा बनी बल्कि अत्याचार और आर्थिक शोषण की एक व्यवस्था बन गई। ऐसे बहुत सारे जनसमूह थे जिन्होंने जातिप्रथा के ढांचे को कभी स्वीकार नहीं किया। उनमें वे प्रमुख हैं जिनको हम आदिवासी कहते हैं।

अगर हम ब्रिटिश काल से पहले के भारत के सामाजिक भूगोल को आंखों के सामने रखते हैं तो पाएंगे कि भारत के ज्यादातर (राज्यस्तरीय, जिलास्तरीय) इलाकों में ब्राह्मण-क्षत्रिय का वर्चस्व नहीं था, या फिर जातिप्रथा ही नहीं थी। आधे से ज्यादा भौगोलिक क्षेत्र इसी प्रकार का था। ब्रिटिश शासन तथा आधुनिक सभ्यता ने देश के कोने-कोने में शासन व्यवस्था की इकाई बना कर द्विज जातियों को स्थापित किया। ब्रिटिश काल में जाति का ढांचा भारत में सर्वत्र प्रतिष्ठित हो गया। अस्पृश्यों को उसमें जोड़ लिया गया लेकिन 'आदिवासी' समूह उसके बाहर अभी तक है। इसकी कीमत वे चुका रहे हैं।

जातिप्रथा और आधुनिक सभ्यता ने मिल कर आदिवासियों को ऐसा कर दिया मानों यह देश उनकी नहीं, यानी उनके लिए नहीं है। जातिप्रथा ने उनको समाज से अलग-थलग माना, लेकिन आधुनिकीकरण ने उनको आर्थिक व्यवस्था से, जीविका से, आवास स्थलों से विस्थापित कर दिया। भारतीय समाज में दलित सर्वाधिक घृणित है तो आदिवासी सर्वाधिक बहिष्कृत, दबाया हुआ, वंचित और निरक्षर है। आजाद भारत में अभी तक यह सिलसिला चल रहा है। आधुनिक विकास और उसके औद्योगीकरण का सिलसिला रहेगा तो आदिवासियों की नियति बदलनेवाली नहीं है। उनकी भाषा, उनकी कला, उनका हुनर लगभग समाप्त हो गया है।

इस समस्या का समाधान 'कौन बाहर से आया' वाले सूत्र से नहीं होनेवाला है, न अधिकारों की लंबी फेहरिस्त बना कर इसका समाधान ढूंढ़ा जा सकता है। सामाजिक केंद्रीकरण यानी जातिप्रथा उसका प्रारंभिक दुश्मन थी। इस वक्त ग्लोबीकरण और आधुनिकीकरण इसके सबसे बड़े शत्रु हैं। पूरी दुनिया में ग्लोबीकरण की जो व्यवस्था चलाई जा रही है उसके सोपानीकृत (हायरारकीकल) ढांचे में किसी भी सबसे ऊपर गोरी चमड़ीवाली नस्ल है। इस नस्लवाद के द्वारा परिचालित विकास के ढांचे में किसी भी प्रकार की 'अधिकारों' की सूची में आदिवासियों की स्थिति सुधरनेवाली नहीं है। अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में एक परिपाटी बन गई है कि दुर्बल समूहों के लिए कुछ अधिकारों को चिह्नित कर दिया जाए और अधिकारों का एक घोषणापत्र जारी कर दिया जाए। विषमता के बुनियादी ढांचे को बदले बगैर अधिकारों पर अमल नहीं हो सकता – गरीबी रेखा के नीचे रहनेवाला भारतीय संविधान के किसी भी मौलिक अधिकार का उपयोग नहीं कर सकता। पूंजीवादी ग्लोबीकरण में सबके लिए एक सोपान निर्धारित है – कौन कितना नीचे रहेगा, इसका फैसला हो चुका है। 'अधिकार' का कोई काम वहां नहीं है।

आदिवासी को आर्थिक स्वायत्तता चाहिए और विकास का एक ऐसा आर्थिक ढांचा चाहिए जिसका लक्ष्य समानता और स्वावलंबन हो। जंगल उसका होना चाहिए, जल और जमीन पर उसका नियंत्रण होना चाहिए। आदिवासी बहुल इलाके को 'अलग राज्य' बना देने से भी आदिवासी को शोषण बंद नहीं हो जाता है। छत्तीसगढ़ का मुख्यमंत्री आदिवासी है। एक निजी कंपनी को छत्तीसगढ़ राज्य सरकार ने एक नदी बेच दी है। उस नदी पर आदिवासियों तथा अन्य जनसमूहों का अधिकार समाप्त कर दिया गया जो हजारों सालों से था। हमलोग केवल अधिकार की बात न करें, अधिकार के साथ-साथ समतावादी ढांचा और नई विकास नीति चाहिए, जिसमें जनभागीदारी हो। और भागीदारी का मतलब 'दायित्व' होता है। ट्रेड यूनियनों ने 'अधिकारों' की एक गलत संस्कृति चलाई थी।

गांधी पर प्रहार

अत्युतानंद किशोर 'नवीन'

एक माह पहले एक पारिवारिक कार्यक्रम में राजनैतिक हत्याओं पर बातचीत चल रही थी। जब गांधी हत्या का प्रसंग आया तो एक समादृत रामदेववादी ने आश्वस्त भाव से टिप्पणी की, 'गांधी की हत्या देश के लिए की गई थी।' यह सुनते ही मुझे काठ मार गया, और दूसरे भी हतप्रपभ रह गए।

अध्यात्म और योग के जो प्रशिक्षण शिविर चलते हैं उनमें सायास तरीके से राजनीतिक व आर्थिक हित समाहित किए जाते हैं। रामदेव महाराज के शिविर में दर्जनों बैनर लगे रहते हैं उनमें महापुरुषों की तस्वीरों के मध्य महात्मा गांधी को भी जगह दी जाती है। रामदेववादियों के मानस पटल पर यह धारणा कैसे बद्धमूल हो गई कि गांधी की हत्या देश के लिए की गई थी। निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि उच्च स्तरीय हलकों में इस तरह के मानस निर्माण की कार्यशालाएं चलाई जाती हैं। आध्यात्मिक व्यक्ति (वह भी योगाचार्य) कभी किसी दल विशेष का प्रवक्ता नहीं बन सकता। रामदेव महाराज ने 2014 के चुनाव पूर्व भाषणों में जनता से वादा किया था कि भाजपा के सत्तासीन होने पर पेट्रोल 35 रुपये लीटर बिकेगा और विदेशी बैंकों में जमा कालाधन भारत मे आ जाएगा। आज जब कोई योगगुरु से इसकी चर्चा करता है तो वह तिलमिला उठते हैं। दरअसल संत को सीकरी (फतेहपुर सीकरी, जो अकबर की राजधानी थी) से क्या काम? जब शहंशाह अकबर ने संत कुंभनदास को मिलने के लिए बुलाया तो कुंभनदास ने अकबर से कहा था, 'संतन को सीकरी से कोन काम / आवत जात पनहियां टूटी, बिसरी गयो हरिनाम। जिनको मुख देखे दुःख उपजत, तिनको करनी परियो परनाम। कुंभनदास लाल गिरधर बिन और सनै बे-काम।'

गोस्वामी बल्लभाचार्य के शिष्य कुंभनदास परम दरिद्री रहने पर भी कभी किसी राजा-महाराजा से धन लेना स्वीकर नहीं किया।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपने प्रातः स्मरणीय लोगों में गांधी को भी स्वीकार किया है। मगर किसी भी संघी को थोड़ा भी कुरेदिए तो गांधी विषयक जुगुप्सा फौरन झलक जाएगा। गांधी की गोडसे द्वारा की गई हत्या को वह दुरुस्त ठहराएगा।

भारतीय जनता पार्टी की स्थापना 1980 में दिल्ली में हुई थी। इस सम्मेलन में गांधीवादी समाजवाद को स्वीकार किया गया था। मगर भाजपा के शीर्ष नेतृत्व से लेकर सामान्य कार्यकर्ता तक को न तो गांधी से और ना ही समाजवाद से कोई सरोकार है। इसके उलट गोडसे पूजक व गांधी निंदक को पार्टी में तवज्जो, पारितोषिक व प्रोन्नति दी जा रही है।

गांधी विरोध के धुर दक्षिणपंथी से लेकर धुर वामपंथी, अंबेडकरवादियों के एक बड़ा समूह व धार्मिक संगठनों में अद्भुत साम्य है। गायत्री परिवार के प्रवर्तक श्रीराम शर्मा आचार्य ने भले ही आजादी की लड़ाई में कारावास की यातना झेली हो, मगर उनके अनुयायी गांधी निंदा में पीछे नहीं है। आर्य समाज ने पंजाब में हिंदू-सिख के दरार को और भी चौड़ा करने का काम किया है। आर्य समाजियों ने हिंदुओं को मर्दुमशुमारी में पंजाबी की जगह हिंदी मातृभाषा लिखने को प्रेरित किया, जबकि वे पंजाबी को ही ओढ़ते-बिछाते हैं। चार दशक पूर्व तक रिवाज था कि हिंदू अपने एक संतान को गुरु की सेवा के लिए सिखी बनाता था। रोटी-बेटी का संबंध तो अब बीते युग की बात हो गई है। प्रजापिता ब्रह्मकुमारी के एक कार्यकर्ता (इन्हें मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूं) तो इतने उत्तेजित हो प्रलाप करने लगे, 'गांधी को गोली मार देना एकदम ठीक था।' यह सुनते ही मुझे अलीगढ़ की तथाकथित



साध्वी पूजा शकुन पांडेय का स्मरण हो आया जिन्होंने 30 जनवरी 2019 को एयरगन से गांधी की तस्वीर पर गोली चलाई थी। कबीरपंथी भी अपने धार्मिक प्रवचनों के मध्य भाजपा को मत देने का आह्वान करते हैं। अभिप्राय यह कि हिदू धर्म की लगभग सारी शाखाएं-प्रशाखाएं गांधी विरोधी भाजपा को जिताने के लिए अपने अनुयायियों को लामबंद करती हैं। भाजपा का शीर्ष नेतृत्व अभी खुल कर गांधी विरोध (कुछ सांवैधानिक मजबूरियां भी हैं) नहीं कर पा रहा है। नेहरू विरोध का अध्याय खतम होते ही गांधी विरोध प्रारंभ हो जाएगा। एक बानगी महाराष्ट्र के उप मुख्यमंत्री देवेंद्र फडणवीस की पत्नी अमृता फडणवीस का लें। अमृता कहती हैं, 'महात्मा गांधी पुराने भारत के राष्ट्रपिता हैं जबकि नरेंद्र मोदी नए भारत के राष्ट्रपिता।' वैसे गांधी की चरित्र हत्या का सुनियोजित प्रयास वर्षों से बदस्तूर चला आ रहा है।

कम्युनिस्टों का भी गांधी विरोध पुरातन है। उनका स्पष्ट मानना है कि गांधी पूंजीपतियों के हितैषी हैं, औद्योगिकीकरण के विरोधी हैं, गांधी का ट्रस्टीशिप एक धोखा है, वे समाजवादी क्रांति के राह में बाधक हैं। कम्युनिस्टों ने यह दुर्भावना जन-जन तक फैलाई कि गांधी चाहते तो भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु की फांसी रुक सकती थी। गांधी-ईर्विन समझौते में भगत सिंह और उनके साथियों को फांसी के बचाने की मांग शर्त रूप में शामिल नहीं थी (यह शर्त में शामिल हो भी नहीं सकता था) मगर गांधी ने इस मांग को उपसंहार में रखा था। गांधी जी ने ईर्विन को लिखा, 'जनमत का सम्मान करते हुए फांसी नहीं दी जानी चाहिए।' अपने तईं गांधी ने पूरा प्रयास किया कि भगत सिंह और उनके साथियों को फांसी न दी जाए। वास्तविकता तो यह है कि भगत सिंह और उनके साथियों को फांसी जयगोपाल, फणीन्द्रनाथ घोष व हंसराज बोहरा के मुखबिर बन जाने के कारण हुई थी। उसके उलट बहुतेरे कांग्रेसी नेताओं ने प्रच्छन्न तरीके से क्रांतिकारियों को मदद ही की थी। जहां तक मेरी जानकारी है, बिहार के हाजीपुर के 'गांधी आश्रम' में भगत सिंह दो रात ठहरे थे। चंद्रशेखर आजाद की अंत्येष्टि (जो बहुत सख्त पहरे में हुई थी) में पंडित नेहरू की पत्नी कमला नेहरू व आजाद के दूरस्थ के रिश्तेदार बिनायक मिश्र शामिल हुए थे। आपनी शहादत से पूर्व आजाद नेहरू जी से मिले थे और नेहरू ने उन्हें 1400 रुपये की आर्थिक मदद की थी। यहां यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने एक चुनावी सभा में नेहरू पर यह आरोप लगाया था कि भगत सिंह जब जेल में थे तो वह कभी उनसे मिलने नहीं गए। वास्तविकता तो यह है कि नेहरू भगत सिंह से जेल में गए थे और इस खबर को ट्रिब्युन छापा था। कोई पलट कर उनसे यह पूछे कि क्या केशव बलिराम हेडगेवार, गुरुजी गोलवरकर या श्यामा प्रसाद मुखर्जी जेल में भगत सिंह से मिलने गए थे? भगत सिंह के वकील प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता आसफ अली थे। काकोरी केस के क्रांतिवीर रामकृष्ण खत्री के सुपुत्र उदय खत्री जी ने मुझे बताया था कि जेल से रिहा होने के बाद नेहरू जी ने खत्री को मोटरगाड़ी से पूरा इलाहाबाद घुमाया था। दो साल पहले लखनऊ जागरण संस्करण ने यह खबर छापी कि केशव हेडगेवार ही कोकली केस के केशव चक्रवर्ती थे। लेकिन तुरत इस मिथ्या खबर की पोल खुल गई।

अव अंबेडकरवादियों की बात। दलितों का एक बड़ा तबका गांधी-अंबेडकर पूना पैक्ट को लेकर गांधी का कटु आलोचक है। मेरे सामने एक दलित ने गांधी के ऊपर जो खिनौनी टिप्पणी की उसे लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता। दलितों की दृष्टि में गांधी दलित विरोधी थे।

दरहकीकत गांधी से बड़ा दलितों का हितैषी तो मुझे कोई और नजर नहीं आता। गांधी का ही यह साहस था कि वह भंगी बस्ती में रहते थे और सफाई के काम को प्राथमिकता देते थे। दक्षिण अफ्रीका में गांधी के यहां एक दलित आकर

ठहरा था। उसने शौचालय का इस्तेमाल किया। शौचालय ऐसा था कि हर बार उसे साफ करना पड़ता था। कस्तूरबा ने साफ नहीं किया तो गांधी ने गुस्से में उसे घसीट कर बाहर निकाल दिया था। एक दलित परिवार को गांधी ने आश्रम में रखा तो लगभग सारे आश्रमवासी विरोध में सामने आ गए। दानदाताओं ने आर्थिक सहयोग रोक दिया। गांधी अपनी मान्यता पर अटल रहे। डा. सुशीला नैयर (जो उस जमाने में एमबीबीएस डाक्टर व गांधी जी के सचिव प्यारेलाल की बहन, आजाद भारत में स्वास्थ्य मंत्री बनीं) ने लिखा है, 'एक दलित कार्यकर्ता को दस्त होने लगा तो गांधी ने उसके मल का परीक्षण करना शुरू किया कि दस्त आखिर क्या खाने से हुआ है।' उनके रचनात्मक कार्य का एक मुख्य अंग था अछूतोत्थान। उनके अखबार का नाम ही था हरिजन। बाद के दिनों में गांधी उसी विवाह को आशीर्वाद देते थे जिसमें एक पक्ष निश्चित रूप से दलित हो। दलितों के मंदिर प्रवेश कराने में गांधी के ऊपर हमले भी हुए। मैं एक ऐसे दलित अधिकारी को जानता हूं जिन्होंने अपने स्वजातियों के मध्य घर बनाया। बाद में उन्हें अपने ही स्वजातियों से घिन आने लगा, बाद में घर बेच कर बाहर निकल गए।

मुस्लिम लीग का नेतृत्व गांधी को महज एक हिंदू नेता मानता था। जिन्ना की चिढ़ कोई छिपी हुई नहीं थी। डायरेक्ट एक्शन वाले मुस्लिम लीग की कार्रवाई से कोलकाता में मुसलमानों की अपेक्षाकृत ज्यादा जानमाल की क्षति हुई। तब बंगाल के प्रधानमंत्री (उस वक्त मुख्यमंत्री का पद नहीं था) सुहरावर्दी गांधी के साथ ही 'हैदरी मैंशन' में रहने लगे। वही गांधी जब नोआखाली जाते हैं तो सुहरावर्दी असहयोगी हो जाते हैं। गांधी को गालियां दी जाती है, उनके रास्ते में पैखाना डाल दिया जाता है, जिसे गांधी स्वयं साफ करते थे। बंटवारे के बाद चौधरी खल्लिकुज्मा भारत में ही रह जाते हैं, जो मुस्लिम लीग के चोटी के नेता थे। गांधी जी ने खल्लिकुज्मा को करांची विश्वास से भेजा कि वह जिन्ना से मिल कर हिंदुओं का पलायन रोकें ताकि गांधी का काम दिल्ली में आसान हो सके। मगर खल्लिकुज्मा करांची ही रह गए। गांधी का अपना तीसरा बेटा रामदास उन्हें (गांधी को) हिंदूद्रोही मानता है। रामदास का वह पत्र गांधी खल्लिकुज्मा को दिखाते हुए बेदना प्रकट करते हैं। खल्लिकुज्मा ने अपनी किताब पाथवे टू पाकिस्तान में इसका विस्तार से जिक्र किया है।

अंतिमतः गांधी के अपनों ने भी उन्हें छोड़ दिया। विभाजन का प्रस्ताव कांग्रेस कार्यसमिति ने बिना गांधी की जानकारी के ही स्वीकार कर लिया था। आजाद भारत की अर्थव्यवस्था कैसी होगी, इसके लिए उन्होंने नेहरू से पत्राचार किया था। नेहरू बाद में पलायन कर गए। देश स्वतंत्र होते ही गांधी के सपनों का भारत बिखरने लगा। गांधी ने कहा था कि वायसराय (राष्ट्रपति) भवन को अस्पताल में तब्दील कर दिया जाए। मंत्रीगण छोटे घरों में रहे।

आज का नौजवान अधनंगे गांधी को हिकारत के भाव से देखता है। मगर इसी अधनंगे फकीर के बारे में वैज्ञानिक आईंस्टीन के कथन को दोहराने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता, 'भविष्य की पीढ़ियों को इस बात पर विश्वास करने में मुश्किल होगी कि हाड़-मांस से बना ऐसा कोई व्यक्ति भी कभी धरती पर आया था।'

जब गांधी माउंटबेटन से मिलने गए तो उस वक्त माउंटबेटन की पत्नी और बेटी भी साथ थीं। माउंटबेटन ने गांधी की पोती मनु से कहा, 'मेरी बेटी तुमसे ईर्ष्या करती है, जब वह तुम्हें गांधी की सेवा करते देखती है।'

रानी एलिजाबेथ (द्वितीय) की शादी में गांधी ने अपने हाथ से बना मेजपोश भेजा था। हीरा-जवाहरातों के मध्य गांधी के उपहार को वह अमूल्य मानती थीं।

आखिर कुछ तो विशेष था ही कि अधनंगे गांधी के आश्रम में देश-दुनिया के बड़े से बड़े डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, राजनेता व राजा-महाराजा सिर नवाते आते थे। माउंटबेटन ने यूं ही नहीं उन्हें 'वन मैन आर्मी' कहा था।

गांधी के न चाहते भी भारत विभाजन व भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरु को फांसी हुई। राम और कृष्ण को तो अवतारी पुरुष माना गया है। तब भी राम-रावण युद्ध हो ही गया। उनके वश में युद्ध को टालना नहीं था। गांधी ने भी अपने तैं विभाजन टालने का पूरा प्रयास किया था। गांधी तो खैर, अधनंगा फकीर था। जो मुल्क अपने नायकों का सम्मान नहीं करता, उसे गिरने से कोई रोक नहीं सकता।

श्रद्धांजलि

वरिष्ठ समाजवादी नेता **अकरम हुसैन** नहीं रहे



अकरम हुसैन
(1947-2022)

समाजवादी जन परिषद के वरिष्ठ नेता और पार्टी की पश्चिम बंगाल इकाई के अध्यक्ष अकरम हुसैन अब हमारे बीच नहीं हैं। उनका 20 दिसंवर 2022 को सुबह निधन हो गया। वे 75 साल के थे।

अकरम हुसैन पिछले कुछ महीने से अस्वस्थ थे। अस्पताल से घर आ गए थे। घर पर ही उनका इलाज चल रहा था। एकाएक उनकी तबीयत खराब हो गई। उन्हें जलपाईगुड़ी के स्थानीय एक निजी अस्पताल में भर्ती कराया गया लेकिन वहीं उन्होंने अंतिम सांस ली।

अकरम हुसैन उत्तर बंगाल में समाजवादी नेताओं-कार्यकर्ताओं, खासकर मुस्लिम समुदाय के युवजनों में 'अकरम दा' नाम से पुकारे जाते थे। उनका जन्म जलापाईगुड़ी शहर के एक प्राचीन संपन्न परिवार में 10 जून 1947 को हुआ था। उन्होंने अपने शहर में ही फणेंद्रदेव विद्यालय से उच्च माध्यमिक तक पढ़ाई की। उसके बाद आनंदचंद्र कालेज से राजनीति शास्त्र विषय में ऑनर्स से स्नातक तक की पढ़ाई पूरी की। उत्तर बंग विश्विविद्यालय से स्नातकोत्तर की पढ़ाई पूरी करने के बाद उसी विश्व विद्यालय से कानून की पढ़ाई पूरी कर जलपागुड़ी जिला अदालत में वकालती की। बाद में वे कोलकाता और दूसरे जिलों के अदालतों में वकालती करने जाया करते थे। गरीबों, खासकर अल्पसंख्यकों के अदालती मामलों को निपाटने में वे आगे रहते थे। उन्होंने वकालती शुरू करने के पहले कूचबिहार कालेज में अध्यापकी की।

वे कालेज में पढ़ाई करते वक्त ही राजनीति से जुड़े और छात्र राजनीति करते हुए संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हुए। वे जब कालेज में थे, तभी समाजवादी चिंतक डा. राममनोहर लोहिया के सिद्धांतों व नीतियों से प्रभावित हो गए थे और उन्हें अपना आदर्श मानते थे। बाद में सोशलिस्ट पार्टी द्वारा संचालित पश्चिम बंग चाय श्रमिक यूनियन से जुड़ गए और चाय श्रमिकों के आंदोलनों में अहम भूमिका निभाते रहे। बाद में वे उत्तर बंगाल में दलितों और आदिवासियों के आंदोलन के अगुआ नेता जुगल किशोर रायबीर और कमल बनर्जी के काफी करीब हुए। वे समाजवादी जन परिषद से जुड़े और इस पार्टी को ताकतवर बनाने में कभी पीछे नहीं



जलपाईगुड़ी में शोकसभा

रहे। वे राजनीतिक आंदोलनों में ही नहीं, विभिन्न सामाजिक आंदोलनों में भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते थे। उन्होंने जलपाईगुड़ी वेलफेयर आर्गनाइजेशन के उपाध्यक्ष के पद पर रह कर तरह-तरह के समाज-सेवा के कार्य किए।

उन्होंने उत्तर बंगाल के पिछड़े मुस्लिम समुदायों के आंदोलनों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। पिछड़े मुस्लिम समुदायों को ओबीसी की सूची में शामिल करने की मांग को लेकर आंदोलन के लिए अनग्रसर मुस्लिम संग्राम समिति के गठन में उन्होंने अहम भूमिका निभाई। सेन आयोग के सामने मौजूद होने वाली कमिटी में वे थे और उन्होंने आयोग के सामने तथ्यों को प्रस्तुत कर पिछड़े मुस्लिम समुदायों को ओबीसी की सूची में शामिल कराने की मांग को पूरा कराया।

वे छात्रावस्था से ही आजाद हिंद पुस्तकालय से जुड़े थे और अरसे तक पुस्तकालय की संचालन कमिटी के सदस्य थे। वे दलित और आदिवासियों के अधिकारों और विभिन्न मांगों को लेकर 'उत्तर बंग तपसिली जाति ओ आदिवासी संगठन' के सहयोगी थे। संगठन के तमाम कार्यक्रमों में हिस्सा लेने में कभी भी पीछे नहीं रहे। वे अहिंसा, स्वालंबन, समता और वैकल्पिक विचारों को लेकर चलने वाले 'समता केंद्र' के सदस्य थे। वे समतामूलक व्यवस्था में विश्वास करते थे। वे जाति व धर्म के नाम पर सताए व पीड़ित लोगों के प्रति केवल सहानुभूति ही नहीं रखते, बल्कि उनकी मदद के लिए खड़े रहते थे। जीवन के आखिर समय तक वे सत्य और निष्ठा के साथ समाजवादी राजनीति, श्रमिक आंदोलन, समाज सेवा और सामाजिक आंदोलनों में सक्रिय भूमिका निभाते रहे।

उत्तर बंग तपसिली जाति वो आदिवासी संगठन (उत्जास), समता केंद्र, समाजवादी जन परिषद, पश्तिम बंग चाय श्रमिक यूनियन की ओर से जलपाईगुड़ी के नेताजी सुभाष फाइंडेशन के हॉल में अकरम हुसैन के प्रति शोक और श्रद्धांजलि व्यक्त करने बाबत स्मरण सभा आयोजित की गई। अखिल बंधु सरकार ने उसकी अध्यक्षता की। मिहिर सेन, कमल बनर्जी, शबनम, रंजीत कुमार राय, तुलसी धर, निर्मल घोष दस्तीकार, नरेन दास, पूर्व विधायक गोविंद राय, अमल राय, अबुल हुसैन, मनोतोष प्रमाणिक, प्रदीप बोस, मोमेनूर रहमान ने अकरम हुसैन के बारे में विस्तार से जिक्र किया और श्रद्धांजलि दी।

R.N.I. पंजीयन संख्या 31211/77

श्रद्धांजलि

अख्तर हुसैन नहीं रहे

बिहार आंदोलन के दौरान 1974 में पटना के गांधी मैदान में जनसभा होने वाली थी। केंद्र सरकार और राज्य सरकार, दोनों ने इस जनसभा को किसी भी सूरत में नहीं होने देने का ठान लिया था। पूरे शहर में 144 धारा लागू कर दी गई थी। पूरे इलाके को पुलिस छावनी में तब्दील कर दिया गया था। इसके बावजूद एक नाटे कद का युवक पुलिसिया घेरे के बीच से दौड़ गांधी मैदान के बीचोबीच बने मंच पर चढ़ गया और माइक से ऐलान करने लगा – भाइयो-बहनो...। पुलिस के जवान हतप्रद और बौखलाए मंच की ओर दौड़े और उन्होंने उस युवक को दबोच लिया। वहां के जिलाधिकारी विजय शंकर दूबे के गुस्से की सीमा नहीं रही। वे खुद उस युवक की पिटाई करने लगे और बोलने लगे – तू चपरासी का बेटा होकर नेता बनने चला है...। उन्होंने युवक को पीट कर बुरी तरह से घायल कर दिया और जेल भेज दिया। सरकार के जुल्म को देख कर जन कवि नागार्जुन ने यह रचा – 'अख्तर हुसैन बंद है पटना की जेल में, अब्दुल गफूर है मस्त सत्ता के खेल में।' गफूर मुख्यमंत्री थे।



गांधी मैदान में झंडा फहराने वाला युवक था **अख्तर हुसैन**। समाजवादी अख्तर हुसैन का 11 जनवरी को रांची के एक अस्पताल में निधन हो गया। वे 67 साल के थे। वे अरसे से अस्वस्थ थे। उनकी पत्नी सबीना नाज और दो बेटियां हैं।

अख्तर हुसैन के पिता हाफिज हुसैन पटना कालेजियट स्कूल के कर्मचारी थे। वे रसायन प्रयोगशाला में कार्यरत थे। उनकी पांच संतानें थीं। संतानों में अख्तर हुसैन बड़े बेटे थे। हाफिज चाचा पर अपने बीबी-बच्चों के साथ परिवार के अन्य सदस्यों की देखभाल करने की जिम्मेदारी थी। स्कूल से मिलने वाली तनख्वाह से गृहस्थी का चलना मुश्किल था। वे शाम को बीड़ी बनाने का काम करते थे। अख्तर हुसैन की ठीक से पढ़ाई-लिखाई नहीं हो पाई।

रामनाथ ठाकुर ने अख्तर हुसैन को अपने पिता बड़े समाजवादी नेता कर्पूरी ठाकुर से मिलवाया। अख्तर हुसैन समाजवादी राजनीतिक गतिविधियों में शामिल हो गए। उनकी 1971 में समाजवादी नेता व चिंतक किशन पटनायक से मुलाकात हुई। वे किशन जी के संगठन लोहिया विचार मंच में शामिल हो गए। लोहिया विचार मंच के सदस्य के रूप में उन्होंने बिहार आंदोलन में अहम भूमिका निभाई। किशन पटनायक के साथ रहने की वजह से वे 1977 में जनता पार्टी में शामिल नहीं हुए। काफी पहले उनकी कर्पूरी ठाकुर से भी दूरी बन गई थी। लोहिया विचार मंच के बाद जब किशन पटनायक की अगुवाई में समता संगठन का गठन हुआ तो वे उसमें शामिल हो गए। शुरू में वे सामयिक वार्ता के प्रकाशक भी रहे। लेकिन समता संगठन में कुछ समय रहने के बाद वे गैर सरकारी संगठनों से जुड़ गए और किशन पटनायक से अलग हो गए।

1990 में बिहार में लालू प्रसाद की जनता दल की सरकार बनी तो लालू प्रसाद ने उन्हें 15 सूत्री कार्यक्रम का उपाध्यक्ष बनाया। बिहार आंदोलन से लालू प्रसाद उभरे थे और अख्तर हुसैन भी। लालू प्रसाद ने उन्हें अपने करीब किया। लेकिन अपने स्वभाव की वजह से उनकी लालू प्रसाद से दूरी बढ़ गई। ताकतवर नेता के सामने बिना लागलपेट धड़ल्ले से अपनी बात कह देना उनका स्वाभाव था। एक बार विधानसभा चुनाव में वे उम्मीदवार होते-होते रह गए। किसी पूंजीपति को टिकट मिल गया। वे कलकत्ता (अब कोलकाता) के हाथ रिक्शा को हटाए जाने के खिलाफ आंदोलन में शामिल हुए थे।

माली हालत में रांची की सबीना नाज का उनका साथ मिला। उन्होंने उन्हें अपना बना लिया और आखिर तक उनकी देखभाल की। अख्तर हुसैन पटना से आकर रांची ही रहने लगे और आखिरी सांस रांची में ही ली।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक अतुल कुमार प्रसाद सिंह द्वारा 14, समसपुर जागीर, पांडवनगर, दिल्ली -110091 से प्रकाशित और दीप कलर स्कैन (प्रा.) लिमिटेड, एफ-5, गली नं. 4 ए, फ्रेंड्स कॉलोनी इंडस्ट्रीयल एरिया, दिल्ली-95 से मुद्रित। संपादक : **अफलातून**